

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र सर्वोदय जगत

वर्ष-40, अंक-21, 16-30 जून, 2017

18 जून : दादा धर्माधिकारी-जयंती : नमन्



संघर्ष नहीं, सहयोग

“ मैं थोड़ी देर के लिए मान लेता हूँ कि संघर्ष ही जीवन का नियम है। लेकिन वह नियम किसलिए, जीवन सम्पन्न करने के लिए है या जीवन का नाश करने के लिए? अन्ततः संघर्ष में से भी तो जीवन ही सम्पन्न होना चाहिए न? जिस संघर्ष में से जीवन सम्पन्न होता है, उसे संघर्ष नाम भले ही दे दीजिये, लेकिन असल में वह ‘सहयोग’ ही है।”

—दादा धर्माधिकारी

सर्व सेवा संघ

(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुखपत्र

सर्वोदय जगत

सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रान्ति का संदेश वाहक

वर्ष : 40, अंक : 21, 16-30 जून, 2017

प्रधान संपादक

बिमल कुमार

मो. : 9235772595

संपादक

अशोक मोती

मो. : 9430517733

संपादक मंडल

डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय

सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र

राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)

फोन : 0542-2440-385/223

ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com

Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	: 05 रुपये
वार्षिक	: 100 रुपये
आजीवन	: 1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310

IFSC No. UBIN-0538353

Union Bank of India

Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. किसान आंदोलन के आयाम...	2
2. बहादुरों के लिए है अहिंसा...	3
3. गांधी युग...	5
4. एक अरब का लोकतंत्र...	10
5. स्त्री शक्ति...	14
6. दक्षिण अफ्रीका के गांधीवादी संघर्ष...	17
7. सर्वोदय सम्मान...	18
8. कविताएं...	20

संपादकीय

किसान आंदोलन के आयाम

किसान आंदोलन देश के तमाम प्रदेशों में उग्र रूप ले रहे हैं। कहीं मांग कर्ज माफी की है, कहीं कृषि के उचित मूल्य के लिए तो कहीं भूमि अधिग्रहण के खिलाफ है।

कर्ज माफी की मांग अधिक तीव्रता से इसलिए उठ रही है क्योंकि उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव के प्रचार के दौरान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मादी ने उत्तर प्रदेश की जनता से यह वायदा किया था कि यदि उत्तर प्रदेश में भारतीय जनता पार्टी की सरकार बनी तो मंत्रिमंडल अपनी पहली बैठक में ही किसानों की कर्ज माफी का निर्णय लेगी। स्वाभाविक है कि यदि किसी एक प्रदेश में किसानों का कर्ज माफ किया जा सकता है तो अन्य प्रदेशों में क्यों नहीं, विशेषकर तब जब प्रधानमंत्री स्वयं इसकी जिम्मेदारी ले रहे हों कि यदि उनके पार्टी की सरकार बनी तो किसानों के कर्ज माफ कर दिये जायेंगे।

कर्ज माफी का सवाल वोट बटोरने के मुद्दे तक सीमित नहीं होना चाहिए। इसका उचित तार्किक आधार भी प्रधानमंत्री महोदय को प्रस्तुत करना चाहिए था। ताकि वह देशभर में नीति का आधार बनाया जाता।

देश में कृषि उत्पादन बढ़ाने का काम सरकार की नीति का हिस्सा रही है। उस नीति के अंतर्गत ही संसाधनों को मुहैया करने, कृषि उत्पादन के आगतों (inputs) को सुविधापूर्ण रखने तथा कृषि उत्पादन का उचित मूल्य रखने की जिम्मेदारी सरकार की होती है तथा किसान उत्पादन करने वाला जोखिमकर्ता होता है। उत्पादन के लिए पूंजी (या ऋण) मुहैया कराने का काम बैंकों के माध्यम से होता है। बैंक उद्योग क्षेत्र एवं कृषि क्षेत्र दोनों में पूंजी मुहैया कराता है। इसलिए इनके वसूली के नियम कृषि क्षेत्र एवं उद्योग क्षेत्र के लिए समान होने चाहिए। यदि कृषि क्षेत्र के प्रति दोहरेपन का रवैया नहीं है तो प्रधानमंत्री महोदय को घोषणा करनी चाहिए कि उद्योग क्षेत्र तथा कृषि क्षेत्र दोनों के लिए ऋण वसूली की एक ही नीति होगी, समान नीति होगी। सरकार एवं किसान की साझेदारी से कृषि उत्पादन को बढ़ाया जाना संभव होगा। इसलिए यदि किसी वर्ष किसानों को घाटा होता है तो उस घाटे को किसान और सरकार को मिलकर उठाना होगा। घाटे को बर्दाश्त करने में सरकारी साझेदारी

का ही एक पक्ष कर्ज माफी है। इस संदर्भ में सरकार कोई अन्य नीति भी अपना सकती है, लेकिन घाटे में साझेदारी की बुनियादी जिम्मेदारी का सिद्धांत उसमें प्रकट होना चाहिए।

इससे जुड़ा एक अन्य महत्वपूर्ण सवाल कृषि उत्पादों के मूल्य निर्धारण का है। मूल्य निर्धारण में दो बातें स्पष्ट रूप से बतायी जानी चाहिए। एक, किसान के श्रम का क्या मूल्य लगाया गया है। अर्थात् किसान की प्रतिदिन की औसत मजदूरी, सरकार क्या निर्धारित करती है। यह स्पष्ट करना होगा कि सरकार के किस स्तर के कर्मचारी के समकक्ष, किसान को समझा जाता है, क्योंकि किसान के प्रतिदिन का औसत श्रम-मूल्य उस स्तर के कर्मचारी के समतुल्य होना चाहिए। दूसरा सवाल कृषि क्षेत्र एवं उद्योग क्षेत्र के बीच संबंध व व्यापार की शर्तें क्या होंगी। कृषि क्षेत्र को 100 क्विंटल अनाज देकर उद्योग क्षेत्र से जितना सामान 5 वर्ष पूर्व मिलता था, उतना ही सामान पाने के लिए यदि आज 125 क्विंटल अनाज देना पड़े तो यह समझना चाहिए कि नीतियां कृषि क्षेत्र के प्रतिकूल तथा उद्योग क्षेत्र के पक्ष में हैं। कृषि क्षेत्र एवं उद्योग क्षेत्र के बीच लंबी अवधि तक संतुलन बना रहे, इसके लिए जरूरी है कि कृषि उत्पाद की क्रय-क्षमता घटे नहीं। कृषि उत्पादों के मूल्य निर्धारण में इस पक्ष पर भी ध्यान न देने से किसान आंदोलन उठते रहते हैं।

एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू भूमि के अधिग्रहण का है। किसान एवं ग्राम समाज केवल खेती की जमीन से ही नहीं जुड़े होते। वहां के बाग, चारागाह, जंगल, जल क्षेत्र इन सबसे उनका जीवन जुड़ा होता है। इन सबसे बेदखल करना एक सभ्यता को नष्ट करने के समान है, जिसका कोई आर्थिक मुआवजा नहीं हो सकता। यदि विकास के नाम पर कुछ अन्य गतिविधियां होनी हैं, तो उन अन्य गतिविधियों पर भी किसानों व ग्रामवासियों का स्वामित्व व नियंत्रण होना चाहिए। पूंजी पर भूमि का एवं ग्रामीण श्रम का स्वामित्व अवश्य हो। इसके बिना ग्राम की भूमि के अन्य उपयोगों का हर स्तर पर विरोध जरूरी है।

बिमल कुमार

बहादुरों के लिए है अहिंसा

□ मो. क. गांधी



मैं खैबर यूनियन के संविधान को पढ़े बिना ही उसका सदस्य बन गया हूँ। यह पठानों की चाल है। हमारे लोग पठान का नाम सुनकर ही कांपने लगते हैं।

मैं पिछले दो-तीन वर्षों से बातचीत में सक्रिय भाग लेने में असमर्थ रहा हूँ।

मैं खड़े रहकर भाषण नहीं दे सकता यहां तक कि जब मैं बैठे हुए बहुत देर तक बात करता हूँ तो मेरा सिर चकराने लगता है। यह तो खान-बंधुओं का प्रेम है, जो मुझे यहां खींच लाया है।

यह अच्छा हुआ कि आपने हिन्दू-मुस्लिम एकता के सवाल का जिक्र किया है और आप से मैं कहूंगा कि इस महान कार्य को आगे बढ़ाने के लिए आप लोग क्या-क्या

सर्वाध्य जगत

कर सकते हैं, इस बारे में आप विचार करें। इसमें शक नहीं कि यह काम खास करके आपके नौजवानों का है। हम लोग तो अब बुझे हो चले हैं और मौत के किनारे पर बैठे हैं। इसलिए यह बोझ अब आप ही लोगों को उठाना है। यह महान उद्देश्य किस तरह पूरा हो सकता है, यह आपने खुद ही, अपने मानपत्र में अहिंसा की और खान साहब के काम की तारीफ करके बता दिया है। मुझे यह बात पता नहीं कि आपने यह तारीफ जान-बूझकर की है या नहीं और आपने जो कहा है उसका ठीक-ठीक मतलब आप समझे हैं या नहीं। मुझे आशा है कि आपने जो कहा है, उसका मतलब आप समझते हैं और आपने अपने शब्दों में मन में तौल लिया होगा। अगर ऐसी बात है तो मैं आपको एक कदम आगे ले जाना चाहता हूँ।

मुझे सीमा-प्रांत का दौरा करने में देर हुई, जब पहले-पहल लोगों को, मेरे सीमा-प्रांत में जाने के बारे में मालूम हुआ, तब उन्होंने कहा कि यह आदमी (महात्मा गांधी) लोगों को बुजदिल बनाने के लिए जा रहा है। यदि अहिंसा का यही अर्थ है तो आपको उससे घृणा करनी चाहिए।

एक उर्दू अखबार ने लिखा है कि मैं यहां सरहद के पाठकों को नामर्द बनाने के लिए आया हूँ। सच बात तो यह है कि खान साहब ने मुझे यहां इसलिए बुलाया है कि पठान लोग मेरी ही जबान से अहिंसा का पैगाम सुनें और मैं खुद अपनी आंखों से यह देख सकूँ कि पठानों ने अहिंसा को किस हद तक अपनाया है। इसका मतलब यह है कि उस उर्दू अखबार ने जो भय प्रकट किया है, खान साहब को वैसा कोई भय नहीं है। क्योंकि उनको यह पता है कि सच्ची अहिंसा में इतनी ज्यादा ताकत है कि भीषण-से-भीषण हिंसा उसके मुकाबले में टिक नहीं सकती। इसलिए यदि आप अहिंसा के सच्चे स्वरूप को समझे हैं और खान साहब के कार्य की

कद्र करते हैं तो आपको अहिंसा की प्रतिज्ञा लेनी पड़ेगी। यद्यपि आज के वातावरण में इतनी ज्यादा हिंसा भरी हुई है और हम रात-दिन फौजी दांव-पेचों, हवाई बेड़ों, अस्त्र-शस्त्रों की तैयारियां और जंगी जहाजों की बातें किया करते हैं, तथापि आपको अहिंसा की प्रतिज्ञा करनी होगी। आपको यह समझ लेना है कि निःशस्त्र अहिंसा की शक्ति हर समय शस्त्र-बल से कहीं अधिक है। मैंने तो अहिंसा को अत्यन्त सहज भाव से स्वीकार किया था, मुझे बचपन में ही इसकी तालीम मिली थी और घर का वातावरण भी इसके अनुकूल था। मैं पिछले 50 वर्षों से अहिंसा के सिद्धांत का प्रचार करता आ रहा हूँ। इसमें हिंसा की अपेक्षा अधिक शक्ति निहित है, यह बात मैं दक्षिण अफ्रीका में ही समझ पाया, जहां मुझे अहिंसा के द्वारा—संगठित हिंसा और जातिगत द्वेष का मुकाबला करना पड़ा। मैंने दक्षिण अफ्रीका में इस पर अमल किया, जहां जहां पठानों की तरह हर व्यक्ति सशस्त्र होता है और सरकार ने भी अनिवार्य भर्ती जारी कर रखी थी। उस समय लोगों ने कहा कि मुट्टी भर भारतीय, अहिंसा से दक्षिण अफ्रीकी सरकार का कैसे मुकाबला कर सकते हैं? मैं दक्षिण अफ्रीका से यह दृढ़ धारणा लेकर लौटा कि हिंसा की अपेक्षा अहिंसा का मार्ग श्रेष्ठ है। भारत में भी हमने अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए इसका प्रयोग किया है, और इसमें हमें कुछ सफलता भी मिली है।

हिंसा के तरीके के लिए यदि काफी तालीम की जरूरत है तो अहिंसा के लिए तो उससे भी ज्यादा तालीम की जरूरत है। और यह तालीम हिंसा की तालीम से बहुत ज्यादा मुश्किल होती है। इस तालीम में पहली जरूरी चीज ईश्वर में जीवन्त श्रद्धा का होना है। जिस व्यक्ति का ईश्वर में जीवन्त विश्वास है, वह भगवान का नाम लेकर कभी बुरे काम नहीं करेगा। वह तलवार पर भरोसा न कर,

केवल भगवान पर करेगा। लाखों मुसलमान खुदा के नाम पर पाप करते हैं और लाखों हिन्दू भी जो राम का नाम लेते हैं, ऐसा ही करते हैं। ईश्वर में सच्चा विश्वास रखने वाला व्यक्ति अपने हाथ में छड़ी लेकर नहीं चलता। जो ईश्वर के नाम का जप करता है और कलमा पढ़ता है, वह अल्लाह का भक्त नहीं भी हो सकता है। ईश्वर-भक्त वही व्यक्ति है जो प्रत्येक जीव में ईश्वर के दर्शन करता है। ऐसा व्यक्ति किसी भी दूसरे व्यक्ति को मारने के लिए तैयार नहीं होगा। लेकिन आप शायद यह कहेंगे कि एक बुजदिल व्यक्ति भी यह कहकर ईश्वर के भक्तों में खप जायेगा कि वह तलवार से काम नहीं लेता। कायरता ईश्वर में आस्था का परिचायक नहीं है। ईश्वर में सच्ची आस्था रखने वाले व्यक्ति में तलवार चलाने की ताकत तो होती है, लेकिन वह यह सोचकर उसका इस्तेमाल नहीं करता कि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर की प्रतिमा है।

कहते हैं कि इस्लाम मनुष्य-मात्र में भ्रातृत्व में विश्वास करता है। पर मैं आपसे कहता हूँ कि यह भ्रातृत्व सिर्फ मुसलमानों का ही नहीं, बल्कि मनुष्य मात्र का है। इसके साथ मैं अहिंसा की तालीम के लिए, जो दूसरी जरूरी चीज है, उस पर आता हूँ। हमें नीति के रूप में अहिंसा में विश्वास नहीं करना चाहिए, बल्कि धर्म के अंग के रूप में उसका पालन करना चाहिए। इस्लाम का 'अल्लाह', ईसाइयों का 'गॉड' और हिन्दुओं का 'ईश्वर' असल में एक ही है। जिस तरह हिन्दू-धर्म में ईश्वर के हजारों नाम हैं, इसी तरह इस्लाम में भी अल्लाह के अनेक नाम हैं। ये नाम अलग-अलग व्यक्तित्व को नहीं, बल्कि अलग-अलग गुणों को बतलाते हैं, और इस छोटे-से इनसान ने नम्र भाव से, ईश्वर में गुणों का आरोपण करके, उसे बखानने का प्रयत्न किया है, जबकि ईश्वर तो गुण-दोष से परे है, अवर्णनीय है, अचिन्त्य और अप्रमेय है। ऐसे ईश्वर में जीवंत श्रद्धा होने का अर्थ

है—मनुष्य मात्र को अपना बंधु मानना। इसका अर्थ यह भी है कि सब धर्मों के विषय में एक-सा आदर भाव रखना। यदि इस्लाम आपको प्यारा है, तो हिन्दू-धर्म मुझे प्यारा है और ईसाई धर्म ईसाइयों को प्यारा है। और यह मानना कि आपका धर्म दूसरे धर्मों से श्रेष्ठ है, और दूसरों से अपना धर्म छोड़कर, आपके धर्म में आ जाने के लिए कहना न्यायसंगत नहीं है, यह असहिष्णुता की पराकाष्ठा है और असहिष्णुता एक प्रकार की हिंसा है।

तीसरी जरूरी चीज है, सत्य और पवित्रता को स्वीकार करना, क्योंकि यह हो नहीं सकता कि जो मनुष्य ईश्वर में सक्रिय विश्वास रखने का दावा करता है, वह पवित्र और सत्यनिष्ठ न हो।

अब मैं आपसे यह कह दूँ कि आपने खान साहब की सेवाओं की और अहिंसा की तारीफ अगर सच्चे दिल से की है तो इन चीजों को मानना आपका फर्ज हो जाता है।

यदि आप भारत में और कुल मिलाकर सारी दुनिया में अहिंसा का प्रचार करना चाहते हैं तो इस मामले में मुझे जो अनुभव है, उसके आधार पर आपको मेरी सलाह माननी होगी। यदि आप अहिंसा का त्याग करते हैं तो आपको खान अब्दुल गम्फार खां का भी त्याग करना होगा। वे आपकी मदद के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। ईश्वर भी लोगों के हृदयों को अनुप्रमाणित करके उनके निमित्त से मदद करता है। मैं सारी दुनिया में घूमा हूँ और मैंने देखा है कि लोग अहिंसा के मर्म को समझते-गुणते नहीं हैं। हमें अहिंसा भारत की सम्पत्ति की रक्षा करनी है। हमारे देश के लाखों लोगों को अहिंसा के मर्म को समझना होगा। अहिंसा सभी धर्मों के लिए है।

अहिंसा के समर्थकों के रूप में हिंसा को भूल जायेंगे। यदि इस्लाम धर्म आपको प्यारा है और हिन्दू-धर्म मुझे प्यारा है तो आपकी

तर्क बुद्धि आपको इस निष्कर्ष पर पहुंचने पर मजबूर करेगी कि हमारे दिलों में एक-दूसरे के धर्म के लिए समान आदर भाव होना चाहिए।

जो लोग अगुआ होने का दावा करते हैं, उन्हें इन सब चीजों को स्वीकार करना पड़ेगा और अपने दैनिक जीवन में, इन पर अमल करना होगा। आपको समाज में, मामूली आदमी नहीं बनना है, आपको तो समाज का नेतृत्व करना है। अहिंसा के सेनापतियों के रूप में, आपको मामूली लोगों की अपेक्षा विशेष साधन करनी होगी। वे लोग तो अधिक से अधिक सैनिक ही बन सकते हैं। आपकी अहिंसा पागल अथवा कायरों की अहिंसा नहीं होगी। यह तो लोगों के पास तलवार है, उन लोगों से भी सशक्त होगी। यदि आप इस आदर्श का पालन कर सकें, तो यकीन रखिए, किसी के पास यह कहने का कोई कारण नहीं रहेगा कि अहिंसा आपको नामर्द बना देगी। आपकी अहिंसा तो बड़े-से-बड़े बहादुरों की अहिंसा होगी। □
पेशावर के इस्लामिया कॉलेज में 4 मई, 1938 को दिया गया भाषण।

पहले दो, फिर लो

“तुम दूसरों से जो चाहते हो, वह दूसरों को पहले दे दो, बाद में तुम पाओगे। पहला कदम उठाने तक नीतिशास्त्र आ गया है। सुख चाहते हो, तो पहले तुम सुख दो, बाद में लो। सवा सेर सुख चाहते हो, तो सवा सेर सुख दो। तराजू से तौलकर बिलकुल बराबर दो। गांधी कहता है, तुम दूसरों से जितना चाहते हो, उससे अधिक दो। दूसरों से यदि सवा सेर चाहते हो, तो उन्हें डेढ़ सेर दो। यहां ब्याज लेना नहीं है, ब्याज देना है। यह है—सहजीवन का कर्मयोग-शास्त्र! दूसरे के जीवन में तुम्हें शामिल होना है, अपने जीवन में दूसरे को शामिल करना है।” —दादा धर्माधिकारी

गांधी-युग

□ दादा धर्माधिकारी



यह युग गांधी का युग है। इसलिए आज का सारा वातावरण, सारी पृथ्वी, एक तरह से, उनकी सत्ता से भरी हुई है। हम लोग आज जितनी समस्याएं अपने सामने उपस्थित देखते हैं, वे सारी-की-सारी समस्याएं गांधीजी के इस दुनिया में आने के बाद की समस्याएं हैं। इसलिए पहले जो रूप लेकर समस्याएं हमारे सामने आती थीं, उनसे बिलकुल अलग रूप लेकर आज वे सामने आती हैं। चाहे वे अंतर्राष्ट्रीय समस्याएं हों, चाहे राष्ट्रीय हों, राजनैतिक हों या आर्थिक। समस्याओं का रूप गांधीजी के बाद बिलकुल बदल गया है।

विचार अपौरुषेय है : आज का युग गांधी का युग है। फिर भी जब मैं कोई विचार आप लोगों के सामने पेश करूंगा, तो आप उस विचार को 'गांधी-विचार' और 'गांधीतर-

सर्वोदय जगत

विचार', इस दृष्टि से न देखिये। विचार, विचार है। वह अपौरुषेय होता है। विचार न गांधी का है, न मार्क्स का। विचार न समाजवादी होता है, न सर्वोदयवादी। विचार केवल विचार होता है। जिस प्रकार शब्द आकाश का गुण है, उसी प्रकार विचार मनुष्य का विशेष लक्षण है। विचार मानवव्यापी होता है। इसलिए जो भी शुद्ध विचार है, उसे आप अपौरुषेय मानें, फिर उसको किसी ने भी अभिव्यक्त क्यों न किया हो। हमारे यहां इसकी एक मर्यादा है। लोगों ने उसके भिन्न-भिन्न प्रकार के अर्थ लगाये, परंतु वैसा उसका अर्थ नहीं है। वेदों के बारे में ऐसी एक धारणा हो गयी है कि वेद ईश्वरप्रणीत है। क्या उसने स्वयं इन वेदों को लोगों के सामने गाया या बतलाया या पढ़ा? बुद्धिवादियों के मुकुटमणि भगवान् शंकराचार्य ने अपने गीता के पंद्रहवें अध्याय में 'वेदान्तकृत् वेदविदेव चाहम्' (15:15) यानी 'वेदान्तकृत् मैं हूँ' श्लोक का भाष्य करते हुए लिखा कि वेदान्तकृत् का अर्थ है कि वेदों का प्रथम प्रवक्ता मैं हूँ। ज्ञान को मैंने अभिव्यक्त किया। मैं उसका निर्माता नहीं हूँ। एक बहुत बड़ी वस्तु यह है कि ज्ञान का कोई निर्माता नहीं होता।

ज्ञान वस्तु-तंत्र होता है। किसी की बुद्धि में वह अभिव्यक्त होता है और किसी की वाणी से वह प्रकट होता है।

सर्वोदय में सबसे बड़ी आवश्यकता बौद्धिक अनाग्रह की है। विचार को हम आकाशव्यापी मानें। दुनिया में आज जो समस्या है, वह वैचारिक समस्या है।

रमण महर्षि, श्री अरविन्द और कृष्णमूर्ति जैसे आधुनिक आध्यात्मिक महापुरुषों ने यही मत व्यक्त किया है कि इस युग की जो समस्या है, वह न तो उतनी आर्थिक या राजनैतिक है, जितनी की वैचारिक है। जहां महान् विचारों की एकवाक्यता होती है, वह अक्सर सद्विचार होता है। यों तो सम्मति ही अक्सर सद्विचारों की, यथार्थ

विचार की द्योतक हुआ करती है। जब सब लोगों की राय एक हो जाती है, तब वह उनमें से किसी एक का ही विचार नहीं रहता, वह भगवान का विचार हो जाता है।

'वाद' की नहीं, 'विचार' की समस्या : तुलसीदास की रामायण में एक जगह कहा है कि सुमति और कुमति सबके हृदय में सबके 'उर' में होती है। सुमति की परख 'सम्मति' है और कुमति की परख 'विमति' है। जहां पर मेरा मत 'मेरा' होता है और आपका मत 'आपका' होता है, वहां 'मत' प्रधान नहीं होता, 'मेरा' और 'तेरा' प्रधान हो जाता है। विशेषण प्रधान होता है, विशेष्य गौण हो जाता है। 'मेरा मत' में 'मेरा' पर जोर है। 'तेरा मत' में 'तेरा' पर जोर है। 'मेरा' और 'तेरा' दोनों जहां समाप्त हो जाते हैं और जहां मत ही रह जाता है, वहां समन्वय हाता है। उसे 'सम्मति' कहते हैं। 'जहां सुमति तहां सम्मति नाना।'

'सम्मति' में भी यही अर्थ है कि जहां पर सारी चीजें सम्यक रूप से सबको उपलब्ध होती हैं, वही 'सम्मति' है। सम्मति का मतलब यह नहीं है कि हमको तो खूब मिल जाय, पर दूसरे को कुछ न मिले। सम्मति का अर्थ यह है कि सबको सारी चीजें सम्यक रूप से प्राप्त होती हैं। क्योंकि ऐसा न हो तो वहां विपत्ति आती है। जहां अलग-अलग प्रकार की उपलब्धि है, विप्रतिपत्ति है, विरोध है, वहां दुःख होता है, संकट होता है। जहां सम्मति होती है, वहां सम्मति होती है। यह वह समस्या नहीं है, जिसे आप आर्थिक या साम्पत्तिक कहते हैं। आज की दुनिया की सबसे बड़ी समस्या, प्रधान समस्या है विचार की समस्या, जिसे लोगों ने 'वाद' की समस्या कहा है।

विचार में जब आग्रह आ जाता है, तब वह 'संप्रदाय' में परिणत हो जाता है और संप्रदाय में जब आवेश और उन्माद आ जाता है, तब वह 'वाद' में परिणत हो जाता है।

आपने कभी-कभी सुना होगा कि

‘विचारों का संघर्ष हो रहा है।’ अब यह ‘विचारों का संघर्ष’ एक विरोधाभास है। विचार भी हो और संघर्ष भी हो, यह हो नहीं सकता। विचारों में जब दंगल होने लगता है, तो सारे विचार ‘वाद’ में परिणत हो जाते हैं।

आग्रह नहीं, निष्ठा आवश्यक : यह विचार-शिविर है। अतः हमारे मन में कोई आग्रह न हो, निष्ठा भले ही हो। निष्ठा अलग वस्तु है, आग्रह अलग। निष्ठा में विचारों का दंगल नहीं होता। विचारों का दंगल जहां होता है, विचारों का संघर्ष जहां होता है, वहां एक विचार दूसरे विचार के मुकाबले में खड़ा हो जाता है और फिर वहां एक विचार की जय और दूसरे विचार की पराजय का उद्देश्य होता है। उसमें से तत्त्व-निर्णय या सत्य तक पहुंचने की किसी की इच्छा नहीं रह जाती। मेरा विचार अगर मेरा है और आपके विचार के मुकाबले में खड़ा है, तो किसका विचार जीता, यही हमारे सामने सवाल होता है।

उसमें से दूसरी बुराई यह पैदा होती है कि हम दूसरे का जवाब सोचने में ही सारा समय बिता देते हैं। आपका सवाल है, मेरा जवाब है। सवाल भी खड़ा है, जवाब भी खड़ा है। जवाब सोचने में दोनों का सारा समय बीत गया, तो समस्या की तरफ ध्यान देने के लिए फुर्सत ही किसी को नहीं है। जीवन किनारे रह गया, समस्याएं किनारे रह गयीं। आपका सवाल और मेरा जवाब, इसी में सारा समय बीत गया। भगवद्गीता में ऐसे लोगों को ‘वेदवादरताः’ (2:42) कहा है। ये सब वेदवादी हैं, ये वेदान्ती नहीं हैं। इनको सिद्धांत में कोई मतलब नहीं होता।

इसलिए आप कहीं निरुत्तर हो जायं, तो नम्रतापूर्वक यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि हमारे पास उत्तर तो नहीं है, लेकिन हमारी बुद्धि का समाधान भी नहीं हुआ है। बौद्धिक समाधान बिलकुल अलग चीज है और दलील से दूसरे की दलील काटकर उसको निरुत्तर कर देना बिलकुल अलग चीज है।

निरुत्तर करना तो एक तरह का दंगल है। उस दंगल में जिसके पास पेंच की जितनी ज्यादा शक्ति होगी, जो अधिक तर्ककुशल होगा, वह दूसरे को निरुत्तर कर सकता है।

हम विचार तो अवश्य करें, लेकिन इस दृष्टि से करें कि दूसरों के सामने जो प्रश्न उपस्थित होते हैं, उनको पहले अपने प्रश्न मान लें। ‘ये प्रश्न मेरे प्रश्न हैं, अब मुझे अपनी बुद्धि को समाधान देना है, तो किस प्रकार से मैं इन प्रश्नों का विचार करूं, इसमें दूसरों से किस प्रकार सहायता लूं’— इस तरह के विचार करें।

आज की दुनिया की समस्या विचार की समस्या है और विचार को अगर दुनिया में प्रस्थापित करना है, तो सम्प्रदाय और वाद का निराकरण करना होगा। इसका आरंभ प्रथम पुरुष से करना होगा। ‘प्रथम पुरुष’ को हिन्दी में ‘उत्तम पुरुष’ कहते हैं। भगवद्गीता में कहा है—*‘उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः’* (15:17) यही उत्तम पुरुष है। जब ‘प्रथम पुरुष’ नम्र होकर अपने से आरंभ करता है, तो वही ‘उत्तम पुरुष’ हो जाता है। हम विचार का आरंभ, यानी बौद्धिक अनाग्रह और बौद्धिक निष्ठा का आरंभ अपने से करें। दुनिया में आज जितने प्रमुख वाद हमारे सामने खड़े हैं, उन वादों का हमें खंडन नहीं करना है, उनका समन्वय करना है।

वैचारिक भूमिका में भी अहिंसा : गांधीजी ने हमें जो विचार दिया, उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी वैचारिक भूमिका में भी अहिंसा है। दूसरों के विचारों का निराकरण करना है, दूसरे के विचारों को दुनिया में परास्त करना है और अपने विचार की प्रस्थापना करनी है, इस भूमिका को उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया।

गांधी-सेवा-संघ के के सावली (मध्य प्रदेश) के सम्मेलन में जब यह विचार आया कि गांधीजी के विचारों का प्रचार करने के लिए, ‘गांधी-वाद’ का प्रचार करने के लिए,

कोई योजना बनायी जाय, तब गांधीजी ने एक बात हम लोगों से कही, जो अंत तक हम लोगों के कान में गूंजती रहेगी। उन्होंने कहा कि *“गांधीवाद जैसी कोई चीज कम-से-कम मेरे दिमाग में तो नहीं है। किसी नये वाद की या सम्प्रदाय की स्थापना करने के लिए मैं दुनिया में नहीं आया हूं। मैंने ऐसा कोई उपद्रव नहीं किया है।”* यह एक ऐसी बात उन्होंने कह दी, जिसे दुनिया के सारे बुद्धिवादियों को बहुत नम्रतापूर्वक अपना लेना चाहिए।

बुद्धिमान लोग, प्रोफेसर, वकील, डॉक्टर, अखबारनवीस, संस्कृत के पंडित आदि अक्सर कहते हैं कि आप अगर अपनी बात बुद्धि से, विचार से हमको समझा देंगे, तो हम मानेंगे, दूसरी तरह से नहीं मानेंगे। एक बुद्धिमान, विचारशील मित्र ने तो यहां तक कह डाला था कि *“आपका गांधी वैचारिक क्षेत्र में untrained intellect है, यानी वह ‘दीक्षित’ या प्रशिक्षित प्रज्ञावान् नहीं है, आधुनिक विद्यासम्पन्न नहीं है, उसकी प्रज्ञा अशास्त्रीय है। हमें आप बुद्धि से गांधी की बात समझा सकेंगे, तो मानेंगे।”*

मैंने कहा, *“तब या तो आप मुझे समझा देंगे या मैं आपको समझा दूंगा। और फिर जो समझ जायेगा, वह दूसरों को समझायेगा।”*

कहने लगे, *“नहीं, यह नहीं। दुनिया में आम जनता समझाने से मानने वाली नहीं है।”*

मैंने कहा, *“आपने तो बुद्धि का आधार यहीं छोड़ दिया। आपका तो बुद्धि में विश्वास ही नहीं है।”*

मैंने पूछा, *“तब क्या करना होगा?”* कहने लगे, *“इनको तो डंडे से दुरुस्त करना होगा।”*

“तब तो” मैंने कहा, *“आरंभ अपने से ही करना चाहिए। फिर आप क्यों कहते हैं कि आपको समझाना चाहिए? आप अपने लिए तो कहते हैं कि मुझे समझाना चाहिए और दूसरों के लिए कहते हैं कि इनको समझाने से काम नहीं चलेगा, उनके तो सिर ही फोड़ने पड़ेंगे।”*

बुद्धि-निष्ठा के लक्षण : बुद्धि-निष्ठा का प्रथम लक्षण यह है कि मनुष्य को अपनी बुद्धि में जितना भरोसा हो, उतना ही दूसरे की बुद्धि में भी होना चाहिए। नहीं तो हम उसे बुद्धिनिष्ठ कैसे मानें? जो केवल अपनी बुद्धि में भरोसा रखता है और दूसरे की बुद्धि में भरोसा नहीं रखता, उसमें बुद्धि का भरोसा ही नहीं है। वह बुद्धिवादी है, बुद्धिनिष्ठ नहीं है, बुद्धियोगी नहीं है। ‘ददामि बुद्धियोगं तम्’ (गीता 10:10) ‘मैं बुद्धियोग देता हूँ’, भगवद्गीता ने कहा, ‘बुद्धिवाद देता हूँ’ नहीं कहा।

बुद्धि-निष्ठा का और एक लक्षण।

एक स्टेशन पर एक दफा ऐसा मौका आया कि एक मित्र की मोटर हमें ट्रेन पर चढ़ानी पड़ी। नदी में बहुत बाढ़ थी। स्टेशन-अधिकारी के पास एक दोस्त को भेजा। वह लौटकर कहने लगा कि “वह तो ‘वैगन’ देता ही नहीं है। इतनी जल्दी ‘वैगन’ मिल नहीं सकती कि हमारी मोटर यहां से वहां पहुंच जाय और वहां हमें तुरंत मिल जाय। मैंने बहुत समझाया कि हमें अभी जाना है, नदी में बाढ़ है।”

दूसरे मित्र बोल उठे, “सौ रुपये का नोट क्यों नहीं दिखा दिया? फौरन मान लेता।”

“सौ रुपये के नोट से कैसे मान लेता?” मैंने पूछा, “अभी उसके पास ‘वैगन’ ही नहीं है, तो वह सौ रुपये के नोट में से कहां से आ जाती?”

उसने कहा, “ऐसा माई का लाल दुनिया में अब तक पैदा ही नहीं हुआ है, जो सौ रुपये का नोट लेकर भी न माने!”

यह व्यक्ति धनवान् था। धनवान् का धन में इतना विश्वास!

एक अन्य व्यक्ति कहने लगा, “मुझे क्यों नहीं ले गये? जरा आंख दिखाता और डंडा दिखाता, तो फौरन आपको ‘वैगन’ मिल जाती!”

जिसके पास डंडा है, उसका डंडे में इतना विश्वास! और जिसके पास बुद्धि है,

चाहे कॉलेज का प्रोफेसर हो, चाहे दूसरा कोई बुद्धिवादी हो, उसका दो ही बातों में विश्वास है। कभी कहता है, ‘बगैर पैसे के काम नहीं होगा।’ कभी कहता है, ‘बगैर तलवार के काम नहीं होगा और बुद्धि से तो कभी होगा ही नहीं।’

हमारा भरोसा अगर बुद्धि के सिवा अन्य सारी सत्ताओं पर हो, तो हम विचार कैसे करेंगे? विचार के लिए सबसे आवश्यक बात यह है कि हमारा विश्वास अपनी बुद्धि में हो और मनुष्यमात्र की बुद्धि में हो। मनुष्य का लक्षण यदि हमने बुद्धि को मान लिया है, तो हमको यह भी मान लेना होगा कि मनुष्य की सारी शक्ति उसकी बुद्धि में है।

विज्ञान की सफलता का युग : आज युग तो विज्ञान का है, लेकिन सत्ता विज्ञान की नहीं है। विज्ञान के युग में बुद्धि की भी सत्ता नहीं है और विज्ञान की भी सत्ता नहीं है। इस समस्या का समाधान, गांधीजी की प्रक्रिया (टेक्निक) के सिवा और दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। छान्दोग्य उपनिषद् में वाक्य है, ‘बलं वाव विज्ञानाद् भूयः’— बल विज्ञान से बड़ा है और सैकड़ों विज्ञान वालों को ‘एको बलवान् आकंपयते’—कंपा सकता है। आईन्स्टीन को यही अनुभव हुआ। संसार के दूसरे वैज्ञानिकों को भी यह अनुभव हुआ। आखिर में उन लोगों ने लिख दिया—हमने अपने वैज्ञानिकों को भी पुलिस की निगरानी में रख दिया है। सत्ता पुलिस की है, विज्ञान की नहीं है। सत्ता शस्त्र की है, विज्ञान की नहीं है। और साथ-साथ दुनिया के सारे राज्य-नेता इस परिणाम पर भी पहुंचे हैं कि शस्त्र की सत्ता का युग समाप्त हो रहा है। नतीजा यह है कि विज्ञान तो सार्वभौम हो गया, लेकिन मनुष्य की संस्कृति उसके साथ कदम नहीं मिला पा रही है। एक प्रमुख ईसाई धर्मगुरु ने लिखा है कि—यह विज्ञान की विफलता का युग है। पर असल में तो यह विज्ञान की सफलता का युग है और संस्कृति की विफलता का युग है। हमारी

संस्कृतियां, हमारी सभ्यताएं (मैं बहुवचन में प्रयोग कर रहा हूँ) विज्ञान के साथ कदम नहीं मिला सकी हैं।

‘एकाकी न रमते’ : यह हमारी प्रधान समस्या है। इस समस्या को उपनिषद् ने दो वाक्यों में संकेत के रूप में रखा है।

बृहदारण्यक-उपनिषद् में वर्णन आता है कि आत्मा पहले अकेला था। ‘एकाकी न रमते।’ अकेलेपन में उसकी तबीयत ही नहीं लगती थी।

जेल में हमें जब डराना-धमकाना होता था, तो सुपरिंटेंडेंट कहता था, एकांत कोठरी में, तनहाई में, भेज दूंगा—“तुमको अकेला रखेंगे, जहां किसी से नहीं मिल सकोगे।” बड़ा डर लगता था कि अकेले रहेंगे, तो क्या होगा? यानी अपने ही साथ रहेंगे, तो क्या होगा? आदमी को सबसे बड़ा डर यह है कि मैं अपने साथ रहूंगा, तो कैसे जीऊंगा। संगति की इच्छा उसकी एक बड़ी ‘आकांक्षा’ है।

एकाकी न रमते। अकेले तबीयत नहीं लगती, दूसरे की जरूरत है। जब तक दूसरा न हो, तब तक हमें चैन नहीं है। इसे मनुष्य की सामाजिकता कहते हैं। उपनिषदों ने अपनी भाषा में लिखा, समाजशास्त्री अपनी भाषा में लिखते हैं। लेकिन यह स्वभाव है कि मनुष्य को अकेले अच्छा नहीं लगता, उसे दूसरे की जरूरत होती है। दूसरे के सान्निध्य की और दूसरे की संगति की आकांक्षा में से मनुष्य का चारित्र्य, मनुष्य की सभ्यता और मनुष्य की सामाजिकता का आरंभ होता है।

कायरता के हाथ में हथियार : दूसरा वाक्य भी बृहदारण्यक-उपनिषद् का ही है। वाक्य इसी तरह शुरू हुआ कि आत्मा पहले अकेला था। अब उसको क्या डर है? “मैं अकेला ही तो हूँ न? कोई दूसरा तो यहां नहीं है?” क्यों? द्वितीयाद् वै भयं भवति। दूसरा हो तो डर लगता है। लड़के से कहा कि अंधेरे में अकेले जाओ। तो वह कहता है, “अकेले नहीं जाऊंगा।” “क्यों?” तो कहता है, “कोई वहां होगा। पहले तो तबीयत नहीं

लगती थी कि कोई दूसरा नहीं है, अकेला हूँ। अब वह डरता है कि कहीं दूसरा कोई न हो। दो तरह की प्रवृत्तियाँ उसमें हैं। पहली आकांक्षा थी कि दूसरा हो। दूसरी यह है कि कहीं दूसरा कोई होगा, तो क्या होगा? आज की अंतर्राष्ट्रीय समस्या दूसरे स्वरूप की है। इसका वर्णन हमारे यहां के दार्शनिक, राष्ट्र-उपाध्यक्ष डॉ. राधाकृष्णन् ने किया है। उन्होंने कहा है कि आज का जमाना हथियारबंद कायरता का है। कायरता के हाथ में हथियार है, भीरुता नखशिखान्त हथियारों से लदी हुई है।

अहिंसा के हाथ में गदा : एक जगह राधाकृष्ण की भांति सत्य की और अहिंसा की मूर्तियाँ हैं। अहिंसा के हाथ में गदा है। अहिंसा के हाथ में गदा क्यों है? इसलिए कि शस्त्रों का उपयोग शांति के लिए होना चाहिए, इसका यह प्रतीक है। शांति यदि शस्त्रों की शरण में जायेगी, तो क्या शांति, शांति रह जायेगी? तब तो सत्ता शस्त्र की होगी, शांति की नहीं। शांति को भी यदि शस्त्र की शरण लेनी पड़े, अहिंसा को भी यदि गदा की शरण लेनी पड़े, तब तो फिर जिसकी गदा बड़ी होगी, उसकी अहिंसा भी श्रेष्ठ होगी। अहिंसा तो कहीं रही ही नहीं। यह गदा-युद्ध ही हो जायेगा। उसमें अहिंसा के लिए कहीं स्थान नहीं रहेगा, गदा ही गदा रह जायेगी।

जीवन की संपन्नता और विपन्नता : दूसरी चीज है—*द्वितीयाद् वै भयं भवति*। दोनों जगह अलग-अलग व्यक्ति हों, यह जरूरी नहीं है। आज मैं कह रहा हूँ कि नारायण देसाई नहीं हैं, इसलिए तबीयत नहीं लगती। कल नारायण देसाई से मेरा झगड़ा हो जाता है, तो नारायण देसाई हैं, इसलिए डर लगता है। नारायण देसाई तो वही हैं, लेकिन उसकी तरफ से मेरा जावे रुख था, वह बदल गया है।

उपनिषद् के ऋषि ने यह संकेत किया है कि परायेपन की भावना जहां होती है, वहां डर पैदा होता है। जहां परायेपन की भावना

न हो, जहां दूसरा अपना हो जाता है, वहां जीवन द्विगुणित हो जाता है, सम्पन्न हो जाता है और जहां दूसरा अपना न हो, दूसरा दूसरा हो, परायेपन की, दूजेपन की भावना जहां हो, वहां वह दूसरा हमारे लिए दुःखद हो जाता है और जीवन विपन्न हो जाता है।

संपत्ति और विपत्ति का मैंने एक लक्षण प्रारंभ में बताया था। यहां मैंने इसकी व्याख्या आपके सामने रख दी है कि जहां मनुष्य में परायेपन की भावना कम होती है या बिलकुल नहीं होती, वहां जीवन संपन्न होता है। जहां परायेपन की भावना अधिक होती है या तीव्र होती है, वहां पर जीवन विपन्न हो जाता है।

हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया : निष्कर्ष क्या निकला? परिस्थिति में से, संस्थाओं में से, समाज-रचनाओं में से और मनुष्य की अपनी प्रवृत्ति में से हमें परायेपन की भावना का निराकरण करना है। इसलिए गांधीजी ने इस प्रक्रिया को बहुत अन्वर्थक और यथार्थ नाम दिया कि हमारी प्रक्रिया हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया है। लोगों ने बहुत मखौल किया कि हृदय-परिवर्तन क्या है? कुछ लोगों ने कहा कि हृदय ही नहीं है, तो परिवर्तन कहां है? वैज्ञानिकों ने यहां तक लिखा है कि “डार्विन ने हमारे जीवन में से मन को निर्वासित कर दिया और अब ये नये डार्विन वाले जीवन को ही निर्वासित कर रहे हैं।” यानी दुनिया में सब कुछ रहेगा, सिर्फ जीवन के लिए यहां जगह नहीं है। हृदय और मन को किसी भौतिक शास्त्र में जगह नहीं मिल रही थी और मानस-शास्त्रियों को तो कोई शास्त्री ही मानने के लिए तैयार नहीं था। आज भी ऐसे बहुत लोग नहीं हैं, जो मानस-शास्त्री को एक साबित शास्त्री मानने के लिए तैयार हैं। कहते हैं कि आखिर अपने मन का ही तो शास्त्री है। प्रयोगशाल में जो विज्ञान है, उससे बाहर विज्ञान कहीं है ही नहीं, ऐसा जिन लोगों ने मान लिया, उन लोगों ने गांधी पर यह अभियोग लगाया कि यह मनुष्य ‘अवैज्ञानिक’ बात कहता है। क्योंकि मनुष्य

के हृदय से अधिक अवैज्ञानिक और क्या हो सकता है? सबसे ज्यादा अवैज्ञानिक मनुष्य का हृदय है। गांधी जब हृदय-परिवर्तन की बात कहता है, तो अवैज्ञानिक बात कहता है।

यह है समस्या का स्वरूप। आज की समस्या वैचारिक समस्या है और वैचारिक समस्या के निराकरण की प्रक्रिया मत-परिवर्तन की और हृदय-परिवर्तन की ही प्रक्रिया हो सकती है। आज मानवीय मूल्यों की स्थापना की आकांक्षा है। मानवीय मूल्यों की स्थापना, मनुष्य की बुद्धि और मनुष्य के हृदय की मार्फत ही हो सकती है। मानवीय मूल्यों की स्थापना का दूसरा कोई माध्यम नहीं है। इस संबंध में प्रत्यक्ष जीवन में से, आज के अंतर्राष्ट्रीय जीवन में से, एकाध उदाहरण लीजिये।

गांधी ‘पागल’ थे? : गांधीजी ने 1939 में हिटलर को एक चिट्ठी लिखी कि तुम लड़ाई मत करो और चर्चिल को भी एक चिट्ठी लिखी कि दुनिया में तुम्हारा राष्ट्र प्रमुख राष्ट्र है, शस्त्र-शक्ति में सारी दुनिया तुम्हारा लोहा मानती है, तुम शस्त्रास्त्र फेंक दो। उन दिनों हम लोग वहीं उनके आसपास रहते थे। लोगों ने कहा कि अब तक तो हम समझते थे कि यह आदमी थोड़ा-बहुत विचार कर सकता है, इसको दिमाग है। अब यह हिटलर को चिट्ठी लिखता है। यह तो हद हो गयी! भला इससे भी ज्यादा अविवेक कुछ हो सकता है? लोगों ने कहा कि बड़े आदमियों में ऐसा कुछ होता है। एक-एक खन्त उन पर सवार हो जाता है, फिर उनके दिमाग का संतुलन बिगड़ जाता है। अब वह गांधी था, इसलिए ज्यादा कुछ कहने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी। लोगों ने यहां तक कहा कि इसका मानसिक संतुलन अब नहीं रह गया है।

आज जवाहर क्या कहते हैं? : जाने दीजिए बेचारे गांधी को, आज जवाहरलालजी क्या कह रहे हैं? लोगों ने गांधी को पागल कह लिया। लेकिन उसके बाद आल इंडिया कांग्रेस कमेटी की जो

बैठक हुई, उसमें जवाहरलालजी ने बताया कि व्यवहार ऐसा है, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति ऐसी है, तो बापू ने जवाब दिया था कि “लोग मुझसे कहते हैं कि यह तो हवाई किले बनाया करता है। लेकिन मैं आज तक एक बार भी हवाई जहाज में नहीं बैठा हूँ। इसी जमीन पर रहता हूँ, इसी पर चलता हूँ। मैं आज आपसे कह देना चाहता हूँ कि यह जवाहरलाल मेरा उत्तराधिकारी होने वाला है और आगे का जमाना ऐसा आने वाला है कि मेरी बात ‘यह’ कहेगा। जो बात आज मैं कह रहा हूँ और जिसके लिए लोग मुझे पागल कह रहे हैं, वही मेरी बात आगे चलकर जवाहरलाल कहेगा।”

आज की अंतर्राष्ट्रीय सभाओं में जवाहरलाल जी की इतनी इज्जत क्यों हो रही है? आखिर वहां जाकर उन्होंने कहा क्या? यही न कि भाई, हथियार मत चलाओ! अमेरिका से यही कहा, चीन से यही कहा। उस वक्त गांधी की बात मानने को कोई तैयार नहीं था। आज ये सब लोग जवाहरलाल जी को इस तरह से मानते हैं और उनका ऐसा स्वागत करते हैं, जैसा दुनिया में किसी बादशाह का या किसी संत का कभी नहीं हुआ होगा।

दुनिया में जो ये सारी बातें हो रही हैं, वे गांधी की विभूति का गौरव हैं, फिर उनका प्रकाश चाहे किसी के भी व्यक्तित्व के द्वारा होता हो—वह विभूति, जो आज के युग के साथ समरस हो गयी है, एकरूप हो गयी है। उस विभूति का यह गौरव है, जो आज जवाहरलाल जी की प्रतिष्ठा के रूप में प्रकट हो रहा है। आज समाज में और परिस्थिति में ही यह आकांक्षा है। इसलिए फारमोसा में जब यह व्यक्ति कहकर आता है कि फारमोसा तुम्हारे अपनपे देश का एक अविभाज्य अंग है, लेकिन इसे तुम शस्त्रों से मत लो, तो माओ भी इसकी बात मान लेता है। कम-से-कम इतना तो सोचता है कि इसकी बात विचार करने के योग्य है।

गोवा की समस्या : वही जवाहरलाल जी जब अपने देश में आते हैं, तो गोवा की समस्या के बारे में कहते हैं कि “मैं हथियार नहीं चलाऊंगा।” लोग पूछते हैं, “फौज रखते हो और हथियार नहीं चलाते?”

“फौज नहीं रखता और हथियार नहीं चलाता, तो आप कहते कि विवशता है। मेरे पास फौज है, मेरे पास हथियार है और फिर भी मैं हथियार नहीं उठाता, तो विवशता से तो ऊपर उठता ही हूँ। आप मुझे बेवकूफ कह सकते हैं, लेकिन कायर तो नहीं कह सकते। हां, मैं यदि यह कहता कि अमेरिका के खिलाफ हथियार नहीं उठाता, रूस के खिलाफ हथियार नहीं उठाता, तो आप कहते कि उठा ही नहीं सकते हो। इसलिए तुम विवशता को सद्गुण बना रहे हो। विवशता तुम्हारी शक्ति नहीं हो सकती, लाचारी है, मजबूरी है, तुम कर क्या सकते हो? लेकिन मैं तो गोवा के बारे में ऐसा कह रहा हूँ।”

जिसके हाथ में सत्ता हो और जो राज्य-नेता रहा हो, वह सामर्थ्य रहते हुए भी हथियार चलाने से इनकार कर दे, ऐसा तो उदाहरण मैं समझता हूँ कि अशोक के बाद यही हुआ है। इतिहास में ऐसे उदाहरण साधु-संतों के देखने को मिलते हैं। भीष्म का उदाहरण है, लेकिन उसकी भूमिका बिलकुल भिन्न है। आज के अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में जब आप इस वस्तु को रखेंगे, तो आप मेरे साथ सहमत हो जायेंगे कि यह एक आकांक्षा आज के युग में है।

दूसरी तरफ गोवा में हमारे कुछ भाई, जिनकी वीरता, त्याग और देश-भक्ति के विषय में किसी को कोई संदेह नहीं हो सकता और आज हम सब जिनके सामने नतमस्तक ही होंगे, गोवा में सत्याग्रह कर रहे हैं। सवाल है कि आखिर इन्हें सत्याग्रह का ही एक उपाय क्यों सूझा? फारमोसा में कोई सत्याग्रह करने नहीं गया। कोरिया में कोई सत्याग्रह करने नहीं गया। क्योंकि, वहां की हवा में

और वहां की मिट्टी में ही सत्याग्रह नहीं था। यह सत्याग्रह चाहे सबल सत्याग्रह हो या चाहे शुद्ध सत्याग्रह हो। वह सवाल छोड़ दीजिए। थोड़ी देर के लिए आप तटस्थ वृत्ति से वस्तुस्थिति को सोचें, तो आपको यह मानना पड़ेगा कि इस देश में जब कभी अंतिम उपाय योजना का विचार मनुष्य के मन में आता है, तो उसके मन में सत्याग्रह का विचार आता है।

गांधी की विभूति के दर्शन : इसलिए मैंने आपसे कहा कि इस युग में जहां मैं देखता हूँ वहां सारी समस्याओं में से मुझे गांधी की विभूति के ही दर्शन होते हैं। हर जगह उनकी सत्ता का भान होता है। आज सत्याग्रह की वैचारिक पकड़ इस देश पर इतनी है कि हम जहां शस्त्र का उपयोग कर सकते हैं, वहां भी शस्त्र का उपयोग नहीं कर रहे हैं। शस्त्र का उपयोग निःशस्त्र प्रतिकारियों के साथ हो रहा है। शांतिमय शूरता दिखाने वाले लोगों पर आसुरी अत्याचार गोवा में हुआ, यह दृश्य दुनिया के सामने उपस्थित हुआ।

दो अलग-अलग उदाहरण हमने देखे। एक तो फारमोसा का, जहां जवाहरलाल जी की बात मानी गयी कि शांति से, समझौते से, काम लिया जाय। दूसरा गोवा का। जवाहरलाल जी का आशय क्या था? दुनिया में आज आकांक्षा यह है कि अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान युद्ध से न हो, शस्त्र-प्रयोग से न हो, विवेक से हो और एक-दूसरे को समझने-बुझाने से ही हो। इस भूमिका पर वे आरूढ़ हो गये। दूसरी तरफ उन लोगों का शस्त्रों में ही विश्वास है। जिन लोगों का विश्वास न कभी गांधी में था, न उसकी सत्याग्रह की नीति में कभी था, उन लोगों को भी आज सत्याग्रह के प्रतिकार के अतिरिक्त दूसरे किसी तंत्र का विचार नहीं सूझता है।

जीवन की दृष्टि से और समस्याओं की दृष्टि से यह परिवर्तन एक महत्वपूर्ण लक्षण है।

एक अरब का लोकतंत्र

□ आचार्य राममूर्ति



प्रतिरक्षा के बाद लोकतंत्र का प्रश्न लें। अगले कुछ वर्षों में भारत की जनसंख्या बढ़कर एक अरब हो जायेगी, इसलिए अब एक अरब के लोकतंत्र की बात करनी चाहिए। भारत जैसे विविध और विशाल देश का लोकतंत्र कोई मामूली चीज नहीं है। विनोबाजी ने ठीक कहा था कि भारतीय राष्ट्र की समस्याएं पूरे अंतर्राष्ट्रीय जगत की समस्याएं हैं। जिस देश का क्षेत्रफल इतना विशाल हो, जिसमें इतने धर्म और इतनी भाषाएं हों, जिसमें जीवन-शैली की इतनी विविधता हो, और आज जिसमें भयंकर गरीबी और विषमता हो, उसके लिए देश में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का अभ्यास अंतर्राष्ट्रीय सह-अस्तित्व के अभ्यास से किसी तरह कम नहीं है।

सह-अस्तित्व का प्रश्न : गुलामी में भी हमारी देशवासी मिलकर आजादी के लिए नहीं लड़ सके। हिन्दू-मुसलमान कभी साथ हुए भी तो अलग हो गये, और अंत में इस तरह अलग हुए कि देश को भी बांट डाला,

और आज पड़ोसी की तरह भी नहीं रह पा रहे हैं। हमने आजादी पायी देश को तोड़कर और गांधी को खोकर। इस भीषण अनुभव से गुजरने के बाद भी हमारी संविधान सभा ने लोकतंत्र का वही नमूना स्वीकार किया जो अंग्रेजों के देश में प्रचलित है जो भारत के एक राज्य उत्तर प्रदेश जितना भी बड़ा नहीं है। हमने उन्हीं की नकल की जिन्होंने हमें गुलाम बनाया था, और जो जाते-जाते भी दुश्मनी का ऐसा कांटा बोकर गये जो आज भी चुभ रहा है, और न जाने कब तक चुभेगा।

हमारा नया संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ। हमने भारत को गणतंत्र घोषित किया। संविधान में हर नागरिक को वोट का अधिकार मिला। छुआछूत गैरकानूनी करार दी गयी। सभी देशवासियों को मौलिक अधिकारों की गारंटी मिली। सरकार ने जनता के कल्याण की जिम्मेदारी ली। कहा गया कि समता और समाजवाद का युग शुरू हो रहा है।

गणतंत्र के इतने वर्ष बीत चुके। इन वर्षों में हम कहां पहुंचे हैं? जिस राज पर हम आज चल रहे हैं अगर उसी पर चलते रहे तो कहां पहुंचेंगे? कौन कह सकता है कि हमारा देश स्वतंत्र और अखंड रहेगा? भारत का अस्तित्व भारतीयों के सह-अस्तित्व पर निर्भर है। आज सह-अस्तित्व खतरे में है तो कल का अस्तित्व भी खतरे में पड़ेगा।

हमारा लोकतंत्र : हमने राजनीति और प्रशासन के लिए संसदीय लोकतंत्र की शैली अपनायी है। लेकिन उसमें ऐसी कमजोरियां पैदा हो गयी हैं जो राष्ट्र के अस्तित्व के लिए खतरा बनती जा रही हैं। जिस चीज को हमने अपनी लोकतांत्रिक व्यवस्था का आधार माना है वह एक बड़ा खतरा बन गयी है। संविधान के अनुसार राज्य में विधानसभा और केन्द्र में जिसकी मेजारिटी हो उसके हाथ में शासन रहेगा और माइनारिटी विरोध में रहेगी। इस तरह यह ढांचा 51-49 की गणित पर खड़ा है। पश्चिम के देशों में माना जाता रहा है कि लोकतंत्र का अर्थ ही है मेजारिटी का शासन।

हमने इस नियम को भारत पर लागू कर लिया। परिणाम क्या हुआ? हर एक के दिल में भय का निर्माण हुआ। सिक्ख को भय है कि अधिक संख्या के कारण दिल्ली में हमेशा हिन्दू-राज रहेगा, तो क्यों न वह अपना राज बना ले जिसमें उसका ही बहुमत हो? हिन्दू बहुमत का भय मुसलमानों के मन में शुरू से था जिसके कारण वे कभी खुले दिल से आजादी की लड़ाई में शरीक नहीं हुए। उनके नेता समय-समय पर उनको यह भय दिखाते थे, और उन्हें उत्तेजित करते थे। 1942 की जिस 'भारत छोड़ो' क्रांति पर हम इतना गर्व करते हैं उसे जिन्ना और उनकी मुस्लिम लीग मुसलमानों की पीठ में छूरा मानती थी। आजादी के इतने वर्ष बाद फिर मुसलमानों में भय और अलगाव की भाषा जोरों के साथ बोली जाने लगी है। सिक्ख तो खालिस्तान की बात कह ही रहे हैं। सही या गलत, अगर एक बार इस तरह के भय दिलों में घुस जाते हैं तो शांति के साथ पड़ोसी की तरह रहना संभव नहीं होता।

दिल अलग तो देश? : सिक्खों और मुसलमानों की बात अपनी जगह है, स्वयं हिन्दुओं में, जिनमें जातियों-उपजातियों की संख्या लगभग चार हजार है, संख्या का भय घुस गया है। फारवर्ड-बैकवर्ड-हरिजन की दूरी दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। गांवों में भी लोग बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक की भाषा बोलने लगे हैं, यहां तक कि घर बनाते वक्त लोग सोचने लगे हैं कि पड़ोसी किस जाति के हैं। लगभग हर शहर में हिन्दू-मुसलमान की अलग बस्तियां बनती जा रही हैं। गांवों में हरिजनों के टोले पहले से ही अलग थे, अब दूसरी जातियों के भी अलग होते जा रहे हैं। दुर्गा-पूजा में दुर्गा की और सरस्वती-पूजा में सरस्वती की मूर्तियां जातियों के आधार पर अलग-अलग बनने लगी हैं। जब दिल बंट जायेंगे तो क्या बचेगा जो एक रहेगा? आजादी के बाद होना यह चाहिए था कि पहले से चली आयी आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दीवारें ढहतीं, और लोग सह-अस्तित्व (कोएक्विजिस्टेंस) से

बढ़कर सहकारी अस्तित्व (कोआपरेटिव एक्जिस्टेंस) और उससे भी आगे जाकर समन्वित अस्तित्व (इण्टीग्रेटेड एक्जिस्टेंस) तक पहुंचते, और एक मिली-जुली भारतीय संस्कृति का विकास होता, कहां हो यह रहा है कि गांधी-युग में ऊंचे जीवन-मूल्यों का जो स्पर्श मिला था वह प्रायः समाप्त हो गया है, और जो राष्ट्रीयता बनी थी वह टूटती दिखायी देती है। हिन्दू-मुसलमान, आदिवासी-गैर-आदिवासी, धनी-गरीब आदि सब एक-दूसरे को लाल आंखों से देख रहे हैं। भारत जैसे लाल आंखों का देश हो गया है।

स्वाभाविक है कि जब व्यापक तौर पर लोगों के दिलों में भय घुस जाते हैं, और हमेशा का पड़ोसी दुश्मन दिखायी देने लगता है, तो हर समुदाय को, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, अपनी अस्मिता (आइडेंटिटी) खतरे में दिखायी देती है। ऐसे भय के वातावरण में भारतीय संघ भाईचारा कैसे बन सकता है? भारत के कई क्षेत्रीय समुदाय आज तक अपना हृदय भारत के साथ पूरे तौर पर नहीं जोड़ सके हैं। उप-राष्ट्रीय अस्मिताओं (सब-नेशनल आइडेंटिटीज) को राष्ट्रीय अस्मिता (नेशनल आइडेंटिटी) के साथ जोड़ना भारतीय राष्ट्र की एक बुनियादी समस्या है जो हल नहीं हुई है।

राष्ट्र नहीं बना, राज्य बना : सच बात तो यह है कि संविधान के आधार पर हमने चुनावों के लोकतंत्र का एक औपचारिक ढांचा तो खड़ा कर लिया, लेकिन लोकतंत्र के मूल्यों के आधार पर राष्ट्र-निर्माण की योजना नहीं बनायी। लोकतंत्र मात्र एक शासन-पद्धति होकर रह गया। और, शासन-पद्धति भी कैसी? अंग्रेजों ने अपना शासन चलाने के लिए जो ढांचा बनाया था उसे हमने ज्यों-का-त्यों रहने दिया। न पुलिस बदली, न न्याय बदला, न शिक्षा बदली। भूमि-व्यवस्था में केवल जमींदार नहीं रहे, किन्तु स्वामित्व नहीं बदला, भूमि नहीं बंटी। उत्पादन-पद्धति भी केन्द्रित औपनिवेशिक ही बनी रही। गांव अपना माल सस्ता बेचने और शहरी माल महंगा खरीदने की बेबसी झेलते

रहे। नौकरशाही की मुट्ठी में प्रशासन, नेताओं की मुट्ठी में देश; नेता, अफसर, और व्यापारी को मिलाकर एक विशाल शासक-वर्ग का निर्माण हुआ। राजनैतिक और आर्थिक सत्ता के सूत्र राजधानियों और व्यापार-केन्द्रों में सिमट गये। हर चीज केन्द्रित, अति-केन्द्रित, होती चली गयी। इस केन्द्रीकरण का अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि स्थानीय जीवन (लोकल लाइफ) लीडरों और डीलरों के हाथ में पड़कर सूख गया। ग्रामभावना मिट गयी। गांव की लक्ष्मी निकल गयी। गांवों और शहरों में विरोधवादी राजनीति के झंडे फहराने लगे। हमारे गांव गांव नहीं रहे, मात्र घरों के समूह रह गये—द्वेष और मत्सर की आग में जलने वाले। कुल मिलाकर राष्ट्र नहीं बना, राज्य का ही विस्तार होता रहा। राज्य के विस्तार से लोकतंत्र नहीं बनता।

भारत का संविधान लोकतंत्र भारतीय जीवन को स्वस्थ जीवंत राष्ट्रीयता का स्पर्श नहीं दे सका है। लोकतंत्र का विदेशी ढांचा अपनाकर हमने अपनी परंपरा, प्रतिभा और परिस्थिति की घोर उपेक्षा की है। भारत की परंपरा में राजनीति पर धर्म का, ऐसा धर्म जो समाज को धारण करे, अंकुश रहा है। हमारे गांव पंच परमेश्वर (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल के प्रतिनिधियों) के सर्वसम्मत न्याय से संचालित हुए हैं। हमने सदा सम्राट से अधिक महिमा संत की मानी है। ऐसा राज्य-निरपेक्ष जीवन भारत अति प्राचीनकाल से जीता आया है। लेकिन हमने जो व्यवस्था बनायी है उसमें पांच लाख गांव गुलाम-के-गुलाम रह गये और जनता हर चीज के लिए राज्य की मुहताज हो जाने के कारण अनीति के प्रतिकार की शक्ति खो बैठी। बालिग मताधिकार से मतदाता की शक्ति नहीं बढ़ी, उल्टे भ्रष्ट और निकम्मी व्यवस्था अपने कारनामों पर मतदाता की मुहर लगवाती रही।

गांव गुलाम, जनता मुहताज : अंग्रेजों ने जब हमारे ऊपर सत्ता लदी तो परंपरा से प्राप्त हमारी जीवन-दृष्टि भ्रष्ट की, हमारी संस्थाएं तोड़ी, हमारे आचार बदले,

हमारे उद्योग नष्ट किये, हमें गुलाम बनाया, यहां तक कि दिमाग से अभारतीय बना डाला। ऐसा नहीं है कि सदा से हममें सब अच्छाइयां-ही-अच्छाइयां थीं। नहीं, अनेक बुराइयां थीं। पर सबके बावजूद हमारा 'स्व' था जो विदेशी दासता में भी नष्ट नहीं हुआ, स्वतंत्रता के बाद जो लोकतंत्र बना, और उससे जो राजनीति बनी और प्रशासन चला, उसने गांवों और नगरों में बसने वाली जनता के बचे-बचाये स्व को भी समाप्त कर दिया। हजारों वर्षों में पड़ोसीपन और सहिष्णुतापूर्ण सह-अस्तित्व की जो कला विकसित हुई थी वह हाथ से निकल गयी।

लोकतंत्र भी राजनीति में अहिंसा का एक प्रयोग है। लेकिन हमारे लिए वह हिंसा का पदार्थ-पाठ सिद्ध हो रहा है। सत्ता की राजनीति, चोरी और छीना-झपटी की अर्थनीति तथा भोग की जीवन नीति, यह हिंसा की रचना है, अहिंसा की नहीं।

लोकतंत्र का भारतीय स्वरूप : गांधी-परंपरा ने लोकतंत्र का विशुद्ध भारतीय स्वरूप स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है। गांधीजी के 'सर्वोदय' में न वर्णवाद का बहिष्कार है, न वर्गवाद का संहार। उसमें हर व्यक्ति तुल्य पारिश्रमिक (इक्विटेबुल वेजेज) और समान संरक्षण (इक्वल प्रोटेक्शन) का अधिकारी है। इन मूल्यों को विनोबा ने ग्रामस्वराज्य की योजना में पिरोया है। ग्रामस्वराज्य की रचना में हर गांव, हर नगर, एक स्वायत्त इकाई है। भूमि तथा अन्य साधनों पर उसका स्वामित्व है। अपना स्वामित्व, अपना निर्णय, अपना नियोजन (प्लैनिंग), यह है स्वायत्तता की रूपरेखा। इस इकाई में, जैसा जे. पी. ने कहा था, जनता ही सरकार है। यदि हम भारत के लाखों गांवों और नगरों को इस रूप में देखें तो भारत 'पांच लाख ग्राम-गणराज्यों का महासंघ बनेगा', जो गांधीजी का सपना था।

विकेन्द्रीकरण : तीसरी 'डी' डेवलपमेंट यानी विकास की है। डिफेंस और डेमोक्रेसी के संबंध में जो बातें पहले कही गयी हैं यदि वे मान्य हो तो 'डेवलपमेंट' के

क्या लक्ष्य और मूल्य हो सकते हैं, वे स्पष्ट हो जाते हैं। 'डेवलपमेंट' की प्लैनिंग ऐसी होनी चाहिए जो राष्ट्र के जीवन में हिंसा को क्रमशः कम और अहिंसा को प्रतिष्ठित करती जाये। यह तभी संभव है जब विकेन्द्रीकरण की दिशा में पैर बढ़े। विकेन्द्रीकरण की योजना में गांव उत्पादन की बुनियादी इकाई होगा, तथा उत्पादन की हर क्रिया अधिक-से-अधिक परस्पर सहकार (म्युचुअल एड) के आधार पर चलेगी। इस आधार पर हिंसामुक्त मैत्रीपूर्ण पड़ोसी जीवन विकसित होगा।

इस जगह प्रश्न उठता है कि आज हम जैसी दुनिया में जी रहे हैं वह राष्ट्र-राज्यों (नेशन स्टेट्स) की है, जिनके अस्तित्व की गारंटी उनकी शस्त्र-शक्ति में है। क्या भारत दुनिया से अलग राह पर चलेगा? प्रश्न अलग राह का नहीं है; प्रश्न अपनी राह पर चलने का है। आज भारत अपनी राह पर नहीं चल रहा है; पश्चिम की परायी राह पर चलाया जा रहा है। परायी राह पर चलकर किसी देश का राष्ट्रीय जीवन समृद्ध नहीं हो सकता। कुछ बड़े निर्माण के काम भले ही पूरे हो जायें किन्तु राष्ट्र की आत्मा खोखली हो जायेगी, और उसकी जीवनी-शक्ति क्षीण होती जायेगी। यह दिशा बदलनी चाहिए। कोई यह नहीं कह सकता कि भारत एक दिन अचानक अपनी सेना तोड़ दे और निहत्था बन जाये। निहत्थापन अहिंसा नहीं है, कायरता है। लेकिन सही दिशा में कुछ कदम तो उठ सकते हैं। पहले चरण में दो बातें हो सकती हैं। एक, सेना रखते हुए भी हम पड़ोसी देशों से जनता के स्तर पर, सरकारों के स्तर के अलावा, ज्यादा-से-ज्यादा संपर्क और सामीप्य बढ़ा सकते हैं। दूसरी बात यह है कि फौरन हम गांवों को औपनिवेशिक अर्थनीति के नागफांस से मुक्त कर सकते हैं ताकि वे अपना स्वायत्त, स्वाश्रयी जीवन विकसित कर सकें तथा शांति सेना द्वारा स्व-रक्षित हो सकें। इस दिशा में चलने से देश नीचे से ऊपर तक, गांव से राजधानी तक, शक्तिशाली बनेगा। ऐसा करने में राज्य को नकारने या कमजोर करने का प्रश्न नहीं है; प्रश्न है राज्य को सीमित दायरे में रखने का ताकि वह सक्षम

हो, और जनता के सीने पर सवार न हो।

हमें याद रखना चाहिए कि भारत के लंबे इतिहास में केन्द्रित राज्य-व्यवस्था कभी टिकाऊ नहीं रही है। मौर्य-साम्राज्य का वैभव एक सौ वर्ष भी नहीं टिका। गुप्त सम्राटों का उनसे भी कम। सबसे अधिक मुगलों का साम्राज्य टिका 181 वर्ष। स्वयं अंग्रेजों का, जिनके साम्राज्य में सूरज नहीं डूबता था, मात्र 190 वर्ष। जहां तक भारत के इतिहास का संबंध है, वह चिल्लाकर चेतावनी दे रहा है कि भारत की नियति विकेन्द्रीकरण में ही है।

विजेताओं की देन : हमने देखा कि तीन 'डी' के क्षेत्र में नया मोड़ लाने की चुनौती अहिंसा के सामने है। एक दूसरे अर्थ में भी अहिंसा के सामने चुनौती है। जे. पी. ने संपूर्ण क्रांति को बहुआयामीय सांस्कृतिक क्रांति (मल्टीडाइमेंशनल-कल्चरल रेवोल्यूशन) कहा था। हमारे देश में अति प्राचीन काल से अंग्रेज के समय तक समाज विजेता और विजित के संबंधों में जीता रहा है, और उसी संदर्भ में मूल्य और शैली विकसित होती रही है। सबसे पहले अति प्राचीन काल में आर्य आये तो यहां के मूल निवासियों को हराकर बसे, और उत्तर भारत में फैले। उन्होंने मूल निवासियों को दस्यु कहा, राक्षस कहा। आगे चलकर मुसलमान आये तो वे जीते, हिन्दू हारे। जीतने वालों ने हारने वालों को काफिर कहा, और हारने वालों ने जीतने वालों को म्लेच्छ। अंत में अंग्रेज आये। उन्होंने विजित भारतीयों को 'ब्लैकनेटिव' से ज्यादा कुछ नहीं समझा। सदियों-सदियों तक विजेता और विजित के संबंध से एक प्रकार की परजीवी (पैरासाइटिकल) संस्कृति का विकास होता गया, और उसे अपने जमाने की राजनैतिक सत्ता से बल मिलता गया। समाज में शूद्र, श्रमिक और स्त्री की जो हीन स्थिति दिखायी देती है उसकी जड़ें बहुत-कुछ इन्हीं विजेता-विजित संबंधों में हैं। आज का शासक-वर्ग बूथ लूटकर चुनाव जीतता है। वह भी एक प्रकार का विजेता है—बुलेट से न सही, बैलेट से। विजेता होने के नाते वह परजीवी संस्कृति का पोषक है। भारत में आज विकास

का जो वैभव दिखायी देता है वह इसी परजीवी संस्कृति की देन है।

अहिंसा विजेताओं की संस्कृति का पोषण नहीं करती। वह उत्पादकों की, श्रमजीवियों की, निरुपाधिक मानवों की संस्कृति है। उसे ऐसी संस्कृति विकसित करनी है, जिसका आधार श्रम हो, शोषण नहीं। यह बुनियादी प्रयोग, अभ्यास और शोध का विषय है—फन्डामेंटल रिसर्च का। अहिंसक क्रांति को नयी समाज-रचना की यह चुनौती भी स्वीकार करनी पड़ेगी। स्व. धीरेन भाई ने अहिंसक क्रांति के इस बुनियादी सांस्कृतिक पहलू को अपनी जीवन-साधना का विषय बनाया था।

गांधीजी की चेतावनी : 20वीं शताब्दी के अंतिम चरण में यह मानना भूल है कि अहिंसा गांधी की कोई झक (फैड) थी जो गांधी के साथ खत्म हो गयी। बल्कि गांधीजी के जाने के बाद दिनोंदिन यह बात सिद्ध होती जा रही है कि हिंसा से मुक्ति हर नागरिक की आवश्यकता है; उसके हृदय की पुकार है। लेकिन नागरिक के रास्ते में शस्त्र-शक्ति से सुसज्जित राष्ट्र की राज्य-सत्ता खड़ी है। राज्य की हिंसा को गांधीजी ने सबसे खतरनाक हिंसा माना था क्योंकि उसका दमन व्यक्ति के व्यक्तित्व को नष्ट कर देता है। इसलिए चलते-चलते गांधीजी अपने 'अंतिम वसीयतनामे' में लिख गये कि लोकतंत्र की यात्रा में नागरिक-शक्ति बनाम सैनिक-शक्ति की टक्कर अनिवार्य है। हम देख रहे हैं कि डिफेंस, डेवलपमेंट और डेमोक्रेसी, तीनों में वह टक्कर सामने आ गयी है। अहिंसा को इस टक्कर के लिए तैयार होना है, क्योंकि उसे एक नयी संस्कृति का शुभारंभ करना है। इससे बड़ी चुनौती दूसरी क्या होगी?

सैनिक-शक्ति बनाम नागरिक-शक्ति की टक्कर (कनफ्लिक्ट) की बात कहकर गांधीजी ने आने वाले युग के लिए बहुत बड़ी चेतावनी दी है। इस 20वीं शताब्दी में भारत ने और दुनिया ने राज्य-सत्ता द्वारा होने वाले दमन तथा उसके द्वारा होने वाले लोक कल्याण दोनों को देखा है। दोनों के पीछे एक ही राज्य-सत्ता काम करती है जो अस्त्र-

शत्रों से लैस है। राज्यसत्ता के साथ किस तरह पूंजी, धर्म तथा हिंसा की शक्तियां जुड़ जाती हैं, यह हम आज की दुनिया में, देश और विदेश में, हर जगह देख रहे हैं। और देशों की तरह भारत में भी राजनीति, व्यवसाय और सेना (पालिटिक्स, बिजिनेस, आर्मी) का गठबंधन होता जा रहा है। इस गठबंधन के सामने नागरिक और उसकी स्वतंत्रता का कोई मूल्य नहीं रह गया है।

शासक 'विश्व नागरिक' हो गये हैं। उनके लिए राष्ट्र और राष्ट्रीयता का महत्त्व नहीं है। इसके विपरीत लोकतंत्र नागरिक की स्वायत्तता का सिद्धांत है, राज्य की महत्ता का नहीं। इसलिए प्रगति के मंच पर नागरिक और राज्य आमने-सामने खड़े हैं, और दोनों की टक्कर इतिहास की अनिवार्यता-सी लगती है। उस टक्कर के गर्भ से जिस राज्य, समाज, लोकतंत्र और समाजवाद का जन्म होगा वह

आज से भिन्न होगा। यह निर्णय हो जायेगा कि प्रतिरक्षा में नागरिक बनाम पुलिस, लोकतंत्र में दल बनाम मतदाता तथा विकास में गांव बनाम नगर, इनमें कौन जीतेगा, कौन हारेगा। राज्य के पास हिंसा की शक्ति होगी और नागरिक के पास अहिंसा की। कठिन चुनौती है। लेकिन संघर्ष का प्रश्न भी ऐसा है जो सभ्यता की दिशा बदल देता है।



हमारे नवीन एवं महत्त्वपूर्ण पुनर्प्रकाशन

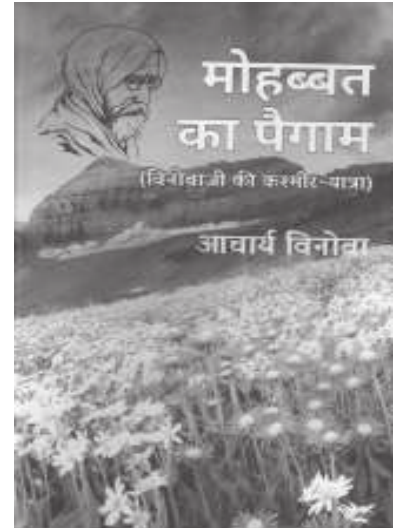
चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी वर्ष के विशेष अवसर पर सर्व सेवा संघ प्रकाशन डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा लिखित 'चम्पारण में महात्मा गांधी' एवं गांधीवादी श्री जयंत दिवाण की पुस्तक 'चम्पारण सत्याग्रह की कहानी' के साथ ही 'मोहब्बत का पैगाम' (विनोबा), 'यह कैसा अंधेर' (लियो टॉल्स्टॉय), 'बिना पैसे दुनिया का पैदल सफर' (सतीश कुमार), 'गांधी और अम्बेडकर' (प्रो. श्रीभगवान सिंह), जैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन किया है। पाठकों से अनुरोध है कि अपने क्रयादेश भेजकर पुस्तकों को मंगाये और जन-जन तक गांधी-विचार पहुंचाने में प्रकाशन का सहयोग करें। -प्रकाशक



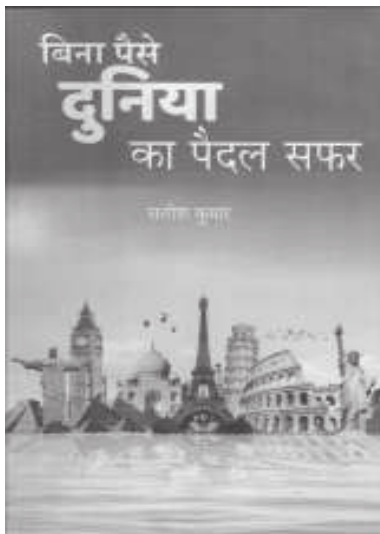
मूल्य : 550/-



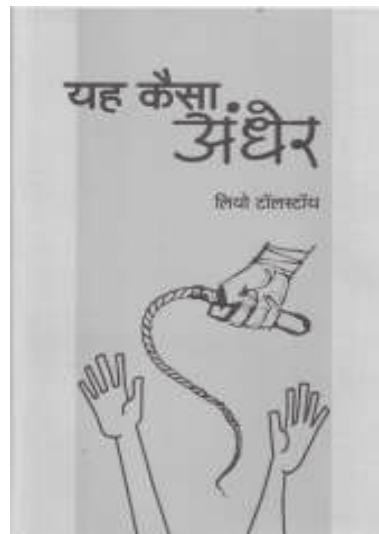
मूल्य : 100/-



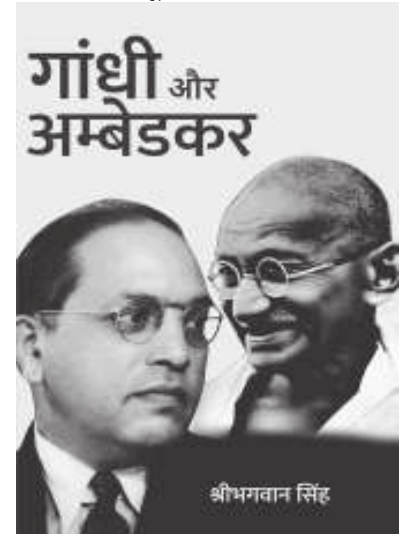
मूल्य : 70/-



मूल्य : 125/-



मूल्य : 50/-



मूल्य : 85/-

□ न्या. चन्द्रशेखर धर्माधिकारी



भारत सरकार महिलाओं के सशक्तीकरण या सबलीकरण की चर्चा कर रही है। कुछ योजना भी बना रही है। विधानसभा और संसद में महिलाओं के लिए आरक्षण हो, इसलिए कानून बनाने की बात सारे राजनीतिक दल कर रहे हैं। राज्यसभा में स्त्री-आरक्षण का बिल भी प्रस्तुत कर दिया गया। लेकिन अखबार में छपी खबर पढ़कर मेरा दिल कांप उठा। वह खबर पाकिस्तान की थी, जिसमें लिखा था कि “फ्रांसी की सजा से मुक्त करने के लिए फरियादी पक्ष ने अभियुक्त से अस्सी लाख रुपया और आठ लड़कियां मांगीं; वह मिलने पर फ्रांसी की सजा माफ कर दी गयी।” न्यायालय की उपस्थिति में ऐसा समझौता करने की परिपाटी पाकिस्तान में है, जिसे ‘वणी’ कहते हैं। यह ‘वणी’ यानी बनिया शब्द का ‘शॉर्ट फार्म’ (संक्षेप) ही लगता है। अभियुक्त को फ्रांसी की सजा सुनायी जाने वाली थी। इसी कारण अभियुक्त ने यह समझौते का रास्ता खोजा और उसका आकलन किया। शुरू में लड़की

के संतप्त परिवार ने एक करोड़ बीस लाख रुपये और बीस नौजवान युवतियों की मांग ‘वणी’ के रूप में की थी। बाद में कुछ धार्मिक नेताओं ने मध्यस्थ के रूप में काम किया और चर्चा के बाद यह ‘वणी’ की रकम अस्सी लाख और आठ तरुण युवतियों तक नीचे आयी। इन युवतियों में एक अठारह साल की लड़की थी, जिसका निकाह अस्सी साल के वृद्ध से तय किया गया था। ‘द न्यूज’ दैनिक ने यह खबर छपी और पाकिस्तान में तहलका मचा। यह तहलका ‘वणी’ पद्धति के खिलाफ नहीं था, बल्कि उसे प्रसारित और प्रकाशित करने के खिलाफ था। दूसरी एक खबर यह छपी है कि पाश्चात्य देशों ने व्यापार में काफी प्रगति की है। ‘सेक्स’ भी वहां बाजार में बिकने वाली व्यापारिक वस्तु है। अब इसे उद्योग का दर्जा दिया जा रहा है और इस व्यापार से मिलने वाला मुनाफा संबंधित व्यक्तियों में बांटा जायेगा। आस्ट्रेलिया में एक ‘ब्राँदेल’ (कोठे) ने जिसका नाम ‘डेली प्लेनेट’ है—एक कंपनी स्थापित कर उसे शेयर बाजार में लिस्ट किया है, ताकि कंपनी के शेयर अच्छे दाम पर खुलेआम बिक सकें। कंपनी के निदेशक आन्द्रे हरीस का कहना है कि यह धंधा काफी मुनाफा (रिटर्न) देने वाला है और यह असीमित (अनलिमिटेड) होगा। जर्मनी में भी ‘सेक्स’ स्टोर है, जहां सेक्स की खरीददारी और बिक्री खुलेआम होती है। ऐसे स्टोर का नाम ‘बीट-यूजे’ है। खबर में यह भी कहा गया है कि भारत में फिलहाल यह धंधा शुरू करने का विचार नहीं था, लेकिन बोगस कंपनी स्थापित कर, कोई प्रमोटर मन में लाये तो यह उद्योग मजे में चल सकता है। वैसे भी भारत में ‘सेक्स’ की बिक्री काफी बड़े पैमाने पर आज भी हो ही रही है, और वेश्या और वारांगना व्यवसाय तो भारत में पुरातन काल से चलता आ रहा है। वह सुप्रतिष्ठित नहीं है, परंतु पिछले दरवाजे से उसमें प्रवेश

होता है। इसका उपयोग शराब आदि व्यसनों के साथ चुनावों में भी किया जाता है। सवाल सिर्फ इतना ही है कि जो वस्तु काले बाजार में बिकती है, उसे खुले बाजार में कैसे उजागर किया जाये। कष्ट की बात यही है कि आज भी स्त्री वस्तु की तरह बाजार में बिकती है, खरीदी जाती है। बाजार के नब्बे फीसदी विज्ञापन उसी के होते हैं, अर्थात उसके बदन के। फिर उसका अपहरण होता है। धर्म के नाम पर उस पर बलात्कार, अत्याचार होते हैं, जो धार्मिक दंगों में धर्मकृत्य माना जाता है। सरकार की आर्थिक स्थिति को मद्देनजर रखते हुए अर्थप्राप्ति के लिए शराब आदि व्यसनों का, जुआ-लॉटरी का व्यापार खुले आम करने वाली सरकारें, वैश्वीकरण के माहौल में इस व्यापार को भी इजाजत दे दें तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। आखिर पाप, पुण्य और व्यसन का व्यापार इस धार्मिक देश में चल ही रहा है। महिलाओं के सशक्तीकरण को इससे आंच नहीं पहुंचती, न ही हमारी नीतिमत्ता बिगड़ती है। इसीलिए अन्य जगह ‘होली’ के दिन शराब की दुकानें बंद रखी गयी थीं, परंतु भारत की राजधानी दिल्ली में ये खुली थीं, बड़े लोगों की सुविधा के लिए। व्यसनों को बड़प्पन मिला, राजमान्यता मिली। शराब स्त्री की नंबर एक दुश्मन है। वह अत्याचार की जड़ भी है। नीतिमत्ता की एक्सपायरी डेट कभी की बीत चुकी है।

युनाइटेड नेशन्स डेवलपमेंट असिस्टेंस फ्रेमवर्क की रिपोर्ट के मुताबिक स्त्रियों को संवैधानिक स्वतंत्रता अभी तक नहीं मिली है। वह कुछ भी अपने मन से नहीं कर सकती। प्रतिदिन लगभग तीन सौ महिलाएं प्रसव के दौरान या गर्भावस्था से जुड़े कारणों से मरती हैं; मतलब हर पांच मिनट पर एक मृत्यु होती है। वैसे भी व्यक्तिगत जीवन में स्त्री यह नहीं तय कर सकती कि विवाह कब करे। उसके शरीर पर भी उसका वश या अधिकार नहीं

होता। उसे मित्र या रिश्तेदार के घर जाने के लिए भी अनुमति लेनी पड़ती है। उसकी औसत आयु 58 से भी कम है। उसे बगैर पूछे बाजार जाने का अधिकार नहीं। वह खुद कमाती हो तो भी उसकी कमाई पर उसका हक नहीं। वह सिर्फ कमाई करने का साधन है। सहेली की बात तो छोड़ ही दें, खुद के लिए भी अपनी ही कमाई इसमें से एक साड़ी खरीदनी हो, तो उसे पति की या घरवालों की इजाजत लेनी पड़ती है। उसे आर्थिक स्वतंत्रता नहीं है। महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों में पिछले दशक में बेतहाशा वृद्धि हुई है। रसोईघर में भी, जहां की वह रानी कहलाती है, वह दूसरों से पूछकर ही खाना बनाती है। रसोईघर की वह महारानी है, ऐसा कहते तो हैं, तो भी उसे गुलाम की तरह जीना पड़ता है। इस रसोईघर में चम्मच से लेकर हर बर्तन पर नाम तो पति का ही होता है। पिछले कुछ सालों में दहेज-विरोधी कानून होने के बावजूद कई हजार महिलाएं दहेज के लिए बलि चढ़ा दी गयीं, मारी गयीं या मरी हैं। महिला आयोग की रिपोर्ट के अनुसार हर 101 मिनट पर 1 दहेज-मृत्यु होती है, हर 54 मिनट पर दो लड़कियों पर बलात्कार होता है। 18 साल से कम की लड़कियों की ही अधिकतर शादियां होती हैं। मंत्री ने पार्लियामेंट में जो निवेदन किया, उसके मुताबिक महिलाओं पर अत्याचार में हर साल वृद्धि हो रही है। आने वाले दशकों में जनसंख्या बढ़ेगी। इससे अधिक स्त्रियों पर अत्याचारों में वृद्धि होगी। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ेगी, उसके परिणामस्वरूप स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों में भी वृद्धि होगी। इनमें अपहरण, बलात्कार, दहेज, मृत्यु, अनैतिक शोषण, लैंगिक अत्याचार, बलात्कार, ससुराल वालों की ओर से छल-कपट आदि शामिल हैं। स्त्री देवी तो मानी गयी है, सिर्फ इन्सान नहीं मानी गयी।

आज दस हजार से ऊपर महिला

अपराधी भारत की जेलों में हैं। उनके लिए अलग से जेल नहीं है। कारावास में भी उनका यौन शोषण होता है। क्योंकि अधिकारी पुरुष हैं। शुरुआत पुलिसकर्मियों की छेड़छाड़ से होती है। फिर जेल-अधिकारी द्वारा शोषण होता है। छः साल तक के बच्चे मां के साथ जेल में रहते हैं। इससे बच्चों के दिलो-दिमाग पर बुरा असर पड़ता है। ये महिलाएं समाज के गरीब, अभावग्रस्त और उपेक्षित तबके से संबंधित हैं, जिन्हें मजबूरन अपराध के दलदल में फंसना पड़ता है। ये अधिकतर निरक्षर होती हैं। कमजोर और उपेक्षित समाज की होने के कारण अत्याचार और सितम सहती हैं। इस परिस्थिति में बदलाव आये, इसलिए कई समितियां नियुक्त की गयीं। इनकी रिपोर्टें सरकारी दफ्तरों में धूल चाट रही हैं। सामाजिक विषमता और भेदभाव तो आम बात है। प्रति हजार पुरुषों में औरतों की संख्या 2001 की जनगणना में 933 है, जो 1991 में 927 थी, यानी छः प्रतिशत अंकों की बढ़ोत्तरी हुई, पर यह टिकाऊ नहीं है। छह साल से नीचे के बालक-बालिकाओं के बीच यह अंतर अठारह अंक से कम हुआ। 1991 में यहां प्रति हजार 945, नीचे गिरकर 2001 में 727 हुआ। कई प्रदेशों में लड़के और लड़की के आंकड़ों का अंतर भयावह है। कुल मिलाकर बालकों में अठारह अंक की भारी गिरावट आयी जो बेटियों के प्रति भेदभाव दर्शाती है। आज भी यानी 2013 में 1000 लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या 922 ही है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार लड़की के जन्म का स्वागत न करने की वृत्ति आज भी कायम है। जिस लड़की के जन्म का स्वागत नहीं होता और फिर भी वह जन्म लेती है, तब उसके नाम प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया, नियतकालिक के मुताबिक अपमानजनक रखे जाते हैं जैसे कि अनचाही, बसकर,

इनफकुमारी, काफी, भरपाई, धप्पन, माफी, मारिया (मरणप्रायी), बाधो (अति हो गयी) आदि। यह मानसिकता आज भी पूरे देश में कायम है। गर्भपात परीक्षण कराकर गर्भ लड़की का हो तो गर्भपात कराये जाते हैं। या फिर भ्रूणहत्या बड़े पैमाने पर होती है। नवजात बालिकाओं को यूरिया या नमक का पानी पिलाकर या गला दबाकर मारा जाता है। यह संख्या लाखों में है। मतलब साफ है कि इस धार्मिक देश में जो देवीपूजक हैं और वैष्णव देवी से कन्याकुमारी तक हजारों देवियों की पूजा करता है, वहां भी कन्या के जन्म का स्वागत नहीं! कुछ दिन पहले अखबार में एक विज्ञापन छपा था, जिसमें लिखा था, “गर्भपात के लिए पांच सौ रुपये खर्च करो और दहेज और शादी के लिए खर्च होने वाले पांच लाख रुपये बचाओ।” कानूनन सब पर पाबंदी है, परंतु कानून आम रास्ते से आता है और हमें गलियों में छिपने की आदत है। दहेज, गर्भपात-परीक्षण पर पाबंदी लगाने वाले कानून कागज पर ही हैं। पुलिस और सरकारी अधिकारियों को इसमें दिलचस्पी नहीं, वे सब पुरुषप्रधान समाज के अंग हैं, और ऐसी स्थिति में स्त्री के सशक्तीकरण की बात करना बेमानी है। पहले वस्तुओं में, दवाओं में मिलावट होती है। आज राजनीतिज्ञों तथा सरकार की नीयत में मिलावट है, खोट है।

स्त्री आज भी बलात्कार और अवमानना के भय से डर-डर कर ही जी रही है। कानून तो मानता है कि जिस स्त्री पर बलात्कार होता है वह ‘विक्टिम’ यानी पीड़ित है, बलात्कार करने वाला पुरुष दोषी है। फिर भी समाज बलात्कारित स्त्री को ही दोषी मानता है। जब तक यह डर रहेगा तब तक वह स्वतंत्र या सशक्त होकर नहीं जी सकेगी। पुरुष ने स्त्री को राजकीय, सामाजिक और आर्थिक गुलामी में रखने के लिए बलात्कार नामक शस्त्र खोज निकाला है। उसके डर के मारे स्त्री सारी

आजादी खो बैठी है। भयभीत जी रही है। इसके लिए सारे समाज को यह मान लेना होगा कि जोर-जबरदस्ती से कोई भ्रष्ट नहीं होता, उससे इज्जत नहीं जाती। इज्जत मन का गुण है। बलात्कार तो शारीरिक दुर्घटना है। उससे मन भ्रष्ट नहीं होता। यह कानून मानता है। यह हमें मान लेना चाहिए कि बलात्कार से स्त्री भ्रष्ट नहीं होती, उसकी आबरू नहीं जाती। इसी के साथ सामाजिक ब्रह्मचर्य की भावना पुरुषों में जगानी होगी। आज तो 'एड्स' का हौवा खड़ा कर सुरक्षित और फ्री यानी स्वच्छंद सेक्स की जाहिरात हो रही है, पोस्टर लग रहे हैं। इसलिए कि 'कण्डोम' बेचने वाली कंपनियों को बाजार मिले। यह युवक-युवतियों को नहीं बताया जाता है कि इस देश की संस्कृति के मुताबिक शादी से पहले शरीर-संबंध नहीं हो, और शादी के बाद प्रभु रामचंद्र की मिसाल सामने रखकर एक पत्नी का ही व्रत हो। इस सीख के बदले 'सेक्स' को बढ़ावा देने के ही कार्यक्रम बढ़ रहे हैं, जो बलात्कार को बढ़ावा देते हैं। राममंदिर निर्माण की बात करने वालों के मन में राम नहीं, इसलिए उनके जीवन में भी 'राम' नहीं है। अब स्त्रियों को यह तय कर लेना चाहिए कि उन्हें 'लिबर्टी' चाहिए या सिर्फ 'सेक्युरिटी' चाहिए, आजादी चाहिए या सुरक्षितता। सुरक्षितता तो पुरुष के बल पर टिकेगी। मतलब पुरुष के मार्फत पुरुष से सुरक्षितता चाहिए, तो फिर स्त्री का जीवन पुरुषावलंबी ही रहेगा।

स्त्री को स्वरक्षित बनना पड़ेगा। आज की स्त्री सहानुभूति, दया, दाक्षिण्य, मेहरबानी या सिर्फ सहूलियत नहीं, अधिकार चाहती है। ये अधिकार उसे संविधान ने प्रदान किये हैं, जिनका आदर होना चाहिए। दूसरी ओर संविधान की धारा 51(क) में जो नागरिक का मूल कर्तव्य है, उसमें कहा है कि "ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है।" अब तो स्त्री भी नागरिक है।

शादी-ब्याह या इतर जीवन में, त्योंहार रूप में हो या अन्य रूप में जितनी भी प्रथाएं उसे दोगुना भूमिका देती हैं, वे उसके सम्मान के विरुद्ध हैं। उनका त्याग स्त्री प्रथम करे। शादी भी वैभव का प्रतीक बन रही है। उसमें काफी कुप्रथाएं हैं। शादी-ब्याह जितना सुलभ और कम खर्च का होगा, उतना ही कन्या के जन्म का स्वागत होगा। क्या यह जरूरी है कि हर लड़की की शादी होनी ही चाहिए? ब्रह्मचारी पुरुष की प्रतिष्ठा शादीशुदा या पिता बने पुरुष से अधिक है। फिर स्त्री को ब्रह्मचर्य का अधिकार क्यों नहीं होना चाहिए? और अब तो जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि प्रति हजार पुरुष से स्त्री की संख्या कम है। अब बाजार का मूल्य मानें, तो भी मांग और आपूर्ति (Demand and Supply) के मूल्य पर स्त्री का पलड़ा भारी होना चाहिए—उसे ही पुरुष से दहेज मिलना चाहिए। आज तो स्त्री कमाती भी है। वह आत्मनिर्भर हो सकती है। फिर भी वह गुलामी क्यों है? आज स्त्री को सभी प्रकार की गुलामी से मुक्ति चाहिए। उसे जीने का, फलने-फूलने का अधिकार चाहिए। उसका आज का आंदोलन मुक्ति का आंदोलन है। इस मुक्ति के आंदोलन का एक हिस्सा राजनीतिक आरक्षण की मांग है। लेकिन अपनी संपूर्ण मुक्ति के लिए उसे ही ज्योति जलानी पड़ेगी। परावलंबी जीवन का त्याग कर स्वयं प्रकाशित, स्वयंसिद्ध जीवन उसे चुनना होगा, तभी उसका सशक्तीकरण हो पायेगा।

इधर हम स्त्री-पुरुष समता की बात करते हैं, और उधर स्त्री को सम्मान तो छोड़ ही दीजिये, कोई भी सुअवसर या मौका नहीं देना चाहते। यह कोई अवसर या मौका प्रदान न करने वाली समता निरर्थक ही नहीं, निन्दनीय असमानता और विषमता है। स्त्री को हमने कभी अवसर ही नहीं दिया, न हम देना चाहते हैं, इसलिए आरक्षण जरूरी है, ताकि उसे मौका तो मिले। आरक्षण बंद रास्ता

समाजवाद कोई औपचारिक तंत्र मात्र नहीं

समाजवाद सिर्फ समाज का बाह्य रूप बदलने से नहीं होता, बल्कि यह तो जीवन की पद्धति है। जीवन के मूल्यों के मिलने से ही वह आ सकता है। किन्तु समाजवादी आंदोलन ने अब तक कानून बनाने का ही काम किया है, व्यक्ति को बनाने का नहीं... राजतंत्र द्वारा बाह्य समाजवाद ही स्थापित किया जा सकता है, समाजवादी जीवन के मूल्य स्थापित नहीं किये जा सकते। उसका आर्थिक अथवा सामाजिक बाह्य ढांचा जरूर खड़ा हो जाता है, किन्तु समाजवादी संस्कृति का निर्माण नहीं होता!... समाजवाद का संबंध समाजवादी सभ्यता और समाजवादी मनुष्य से है।

—जयप्रकाश नारायण

खोलेगा, जो जरूरी है; लेकिन वह संपूर्ण या पर्याप्त नहीं है, जब तक स्त्री में उस प्राप्त अधिकार का उपयोग करने की शक्ति नहीं होगी। पुरुष की दृष्टि और प्रवृत्ति में आमूलचूल परिवर्तन की जरूरत है। लेकिन स्त्री को भी स्वयंसिद्ध और स्वरक्षित तथा स्वतंत्र होना होगा। उसे पुरुषनिर्भरता त्यागनी होगी। वह अनुगामिनी नहीं बनेगी, बल्कि सह-नागरिक बनकर पुरुष के साथ कदम उठायेगी, सहयोगी बनकर। दादा ने कहा था कि स्त्री की मुक्ति की चाबी, उसी के पास है, पर वह उस चाबी को सारी दुनिया में ढूंढ़ रही है, सिर्फ स्वयं को छोड़कर। स्त्री अपनी शक्ति पहचानेगी तो मुक्ति का मार्ग उसे अवश्य मिलेगा। उसकी खोज उसे स्वयं ही करनी होगी। 'स्त्री-मुक्ति' और 'स्त्री-शक्ति' का पवित्र तथा मंगलमय संगम हो, यही सारी समस्याओं का उत्तर है। □

दक्षिण अफ्रीका के गांधीवादी संघर्ष की आखिरी कड़ी

□ सौरभ बाजपेयी

भारतीय मूल के रंगभेद-विरोधी महान नेता अहमद कथराडा नहीं रहे। वह नेल्सन मंडेला, वाल्टर सिसलू और डेसमंड टूटू के साथ दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद विरोधी संघर्ष के प्रसिद्ध नेतृत्व का हिस्सा थे। रंगभेद के खिलाफ इस संघर्ष में उन्होंने अपनी जिन्दगी के 26 साल, तीन महीने रंगभेदी सरकार की जेलों में बिताए थे। इनमें रोबेन आइलैंड की बदनाम जेल के खौफनाक 18 साल भी शामिल हैं। चारों ओर समुद्र से घिरी इस जेल से काफी दूर बसा केपटाउन शहर दिखायी देता था, ताकि कैसी वापस जाने की तमन्ना में हमेशा दुख व अवसाद से घिरा रहे। कथराडा ने अपनी जिन्दगी का एक बड़ा हिस्सा इस जेल में इसलिए गुजार दिया, क्योंकि उन्हें रंगभेद मंजूर नहीं था। गांधीजी ने अफ्रीका में बसे भारतीयों के भीतर अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का जज्बा पैदा किया था। मूलतः गुजराती बोहरा समुदाय के कथराडा उस परंपरा की आखिरी कड़ी थे।

नेल्सन मंडेला व अहमद कथराडा की पहली मुलाकात की कहानी बहुत दिलचस्प है। अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस (एएनसी) हर साल एक मई को रंगभेदी कानूनों के खिलाफ स्वतंत्रता दिवस मनाती थी। 1950 में हुए इस आयोजन में एएनसी के अलावा दक्षिण अफ्रीका की कम्युनिस्ट पार्टी और भारतीय मूल के लोगों की पार्टी ट्रांसवाल इंडियन यूथ कांग्रेस ने भी हिस्सा लिया था। कथराडा ट्रांसवाल इंडियन यूथ कांग्रेस के संगठनकर्ताओं में एक थे। मंडेला का मानना था कि अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस को अन्य पार्टियों से दूरी बनाकर रखनी चाहिए, ताकि

सर्वोदय जगत



वाराणसी में हो गया। आप 69 वर्ष के थे।

आप सर्व सेवा संघ प्रकाशन में पूरी निष्ठा व समर्पण के साथ अपनी सेवाएं दीं। समय-समय पर सर्व सेवा संघ के मुखपत्र 'सर्वोदय जगत' के प्रकाशन में भी आप उल्लेखनीय योगदान रहा। बंदीभाई बेहद

अपने मूल उद्देश्यों पर ध्यान दिया जा सके। यह बात युवा कथराडा को बहुत नागवार गुजरी। नेल्सन मंडेला अपनी आत्मकथा लॉन्ग वॉक टु फ्रीडम में लिखते हैं कि उस वक्त अहमद कथराडा बमुश्किल 22 साल के रहे होंगे। एक दिन सड़क पर घूमते हुए मंडेला और कथराडा मिल गये। कथराडा ने बिना किसी भय के मंडेला के साथ वाद-विवाद शुरू कर दिया। उन्होंने आरोप लगाया कि मंडेला भारतीयों के साथ काम नहीं करना चाहते। मंडेला को बहुत गुस्सा आया और उन्होंने कथराडा की शिकायत अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस, साउथ अफ्रीकन इंडियन कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी से की। बाद में मंडेला ने भारतीय मूल के एक अन्य साथी इस्माईल मीर के समझाने पर यह शिकायत वापस ले ली। अफ्रीका के रंगभेद विरोधी आंदोलन के दो महान नेताओं की यह पहली मुलाकात थी। मंडेला व कथराडा हमेशा अपनी पहली मुलाकात का किस्सा लोगों को सुनाते और खूब ठहाके लगाते थे।

कथराडा उन लोगों में एक थे, जिन्होंने दक्षिण अफ्रीकी संघर्ष के साथ-साथ देश में स्वस्थ लोकतंत्र की बुनियाद भी डाली थी। हाल के दिनों में दक्षिण अफ्रीकी राजनीति में उभरे कट्टरपंथी रुझानों के खिलाफ उन्हें जनता को चेतावनी दी थी। साल 2005 में दिए गये अपने एक भाषण में कथराडा ने कहा था कि सत्ता पक्ष में कुछ लोग विपक्ष को प्रतिद्वंद्वी की तरह नहीं, दुश्मन की तरह

शोक-संवेदना

मिलनसार, मृदुभाषी व विनम्र स्वभाव के थे।

3 जून, 2017 को प्रकाशन के संयोजक श्री अरविन्द अंजुम के नेतृत्व में प्रकाशन व परिसर के सभी कार्यकर्ताओं ने सर्वधर्म प्रार्थना एवं नाममाला का पाठ कर तथा दो मिनट का मौन रखकर विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की। सर्वोदय जगत के संपादक अशोक मोती उनकी निधन पर गहरी संवेदना व्यक्त की।

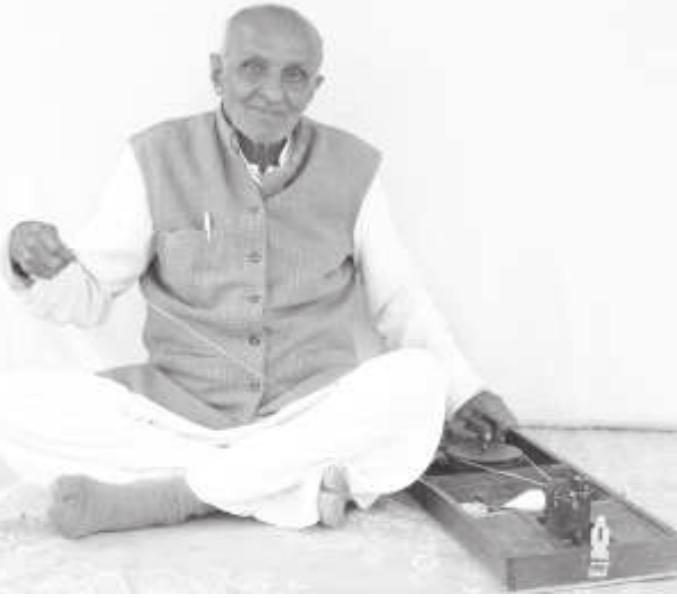
'सर्वोदय जगत' परिवार ईश्वर से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को शांति तथा परिवारजनों को इस असह्य दुख को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।—स.ज. प्रतिनिधि

समझने लगे हैं, जबकि विपक्ष दुनिया की हर लोकतांत्रिक व्यवस्था को अनिवार्य हिस्सा रहा है। उन्होंने यह भी कहा कि युवा पीढ़ी में अपने संघर्ष के इतिहास के प्रति बढ़ती अनभिधाता भी देश में लोकतंत्र के लिए बड़ा खतरा है। उनके मुताबिक युवाओं को यह समझना चाहिए कि स्वाधीनता अपने साथ जिम्मेदारी भी लाती है और स्वाधीनता कोई स्वर्ग से टपकी हुई चीज नहीं है। यह अनवरत संघर्ष से मिली है, जिसके लिए बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है, बलिदान देने पड़ते हैं। उनका कहना था कि जब तक नौजवान यह नहीं समझते कि आजादी कैसे मिली, वे यह भी नहीं जा सकते कि उनके कामों और बातों का देश पर क्या असर पड़ेगा?

दक्षिण अफ्रीका के इस महान स्वतंत्रता सेनानी ने एक बार कह था कि मृत्यु के माध्यम से आप एक बार फिर सभी स्तर धर्म और ओहदे के लोगों को यह सोचने पर मजबूर कर देते हैं कि कैसे उनके अपने कर्म दुनिया पर भला या बुरा असर डालते हैं। यह एक ऐसे क्रांतिकारी का नजरिया है, जिसने ऐसी परिस्थितियों में जेल की सजा काटी, जहां सामान्य तौर पर जीवन से ज्यादा आकर्षण मृत्यु के प्रति होता है। कथराडा इसलिए याद आयेंगे, क्योंकि अपने जीवन और संघर्ष के जरिये वह अफ्रीकी राजनीति का ऐसा नैतिक केन्द्र बन गये थे, जहां देश की भलाई आपसी स्पर्धा और मनमुटाव से कहीं बड़ी हो जाती है। □

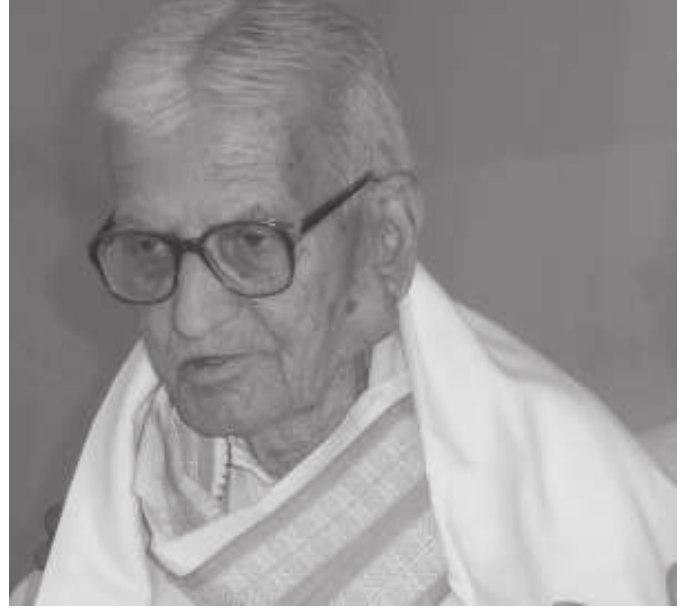
सर्वोदय सम्मान

(सर्व सेवा संघ के 85वें अधिवेशन (25 मार्च, 2017 : मोतीहारी) में सम्मानित किये गये वरिष्ठ गांधीजन)



श्री सत्यदेव जी

गांधी, खादी और सर्वोदय के प्रति आपके समर्पित जीवन के 92 वर्षों के कार्य वंदनीय एवं अनुकरणीय हैं। चरखे के तार के साथ चल रही आपकी जीवन-यात्रा सर्वोदय परिवार ही नहीं देश की नयी पीढ़ी के लिए भी प्रेरणास्पद है।



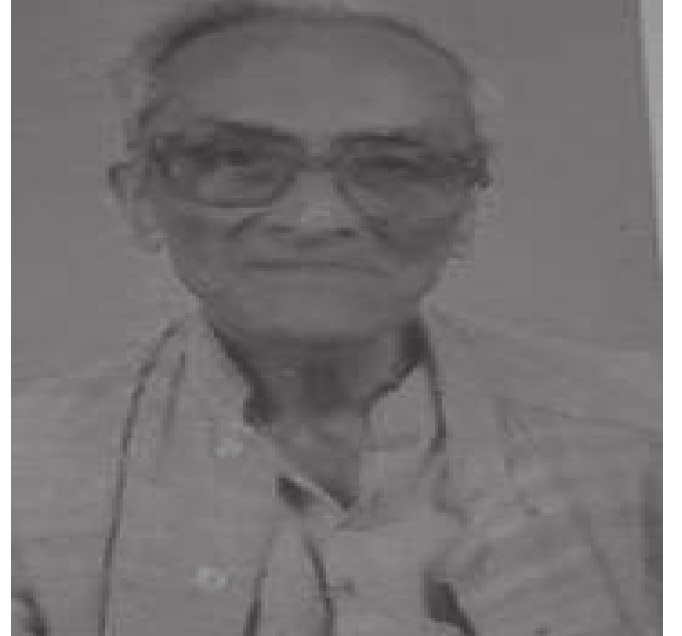
श्री पंथराम जी वर्मा

14 अक्टूबर 1924 को छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले के छोटे-से गांव मटंग में जन्म लेकर गांधी और सर्वोदय विचार के प्रति आपने जीवन समर्पित कर दिया। 93 वर्ष की उम्र में भी गांधी और खादी के प्रति आपकी निष्ठ वंदनीय है।



श्री बिमलचन्द्र पाल

आप पश्चिम बंगाल प्रदेश के विख्यात सर्वोदय सेवक हैं। कोलकाता की रिपोन कॉलेज में अध्ययन के दौरान आप जब विख्यात सर्वोदय नेता श्री धीरेन्द्र मजूमदार के संपर्क में आये तभी से आपके जीवन की दिशा निर्धारित हो गयी। 86 वर्ष की उम्र में भी आप गांधी पथ पर अग्रसर हैं।



श्री विनय कृष्ण चक्रवर्ती

आपने स्कूली शिक्षा के दौरान अपने पिताश्री के सान्निध्य में आजादी के आंदोलन में भाग लेना शुरू किया। देश-सेवा का यह व्रत गांधी-विचार से प्रभावित होकर फलता-फूलता गया। 87 वर्ष की उम्र में भी आप सर्वोदय एवं गांधी-विचार के प्रसार-प्रसार के लिए निरंतर सक्रिय हैं।

सर्वोदय सम्मान

श्री रामदयाल खण्डेलवाल



संक्षिप्त परिचय

नाम : रामदयाल खण्डेलवाल

पिता : स्व. श्री गोविन्द नारायणजी

पता : 48, सचिवालय कॉलोनी, बरकत नगर, जयपुर (राजस्थान)

फोन : 0141-2590350

मो. : 9928397848

E-mail : mkjprca@gmail.com

जन्मतिथि : 8 जनवरी, 1937

शिक्षा : हाई स्कूल यू. पी. बोर्ड से प्रथम श्रेणी, वर्ष 1953

रचनात्मक (सर्वोदय) क्षेत्र से जुड़ाव

1. खादी क्षेत्र

प्रदेश में अनेक प्रादेशिक संस्थाओं की व्यवस्था, भागीदारी, प्रत्यक्ष संस्थाओं का निर्माण और संचालन।

2. प्रत्यक्ष सर्वोदय क्षेत्र

- जिला सर्वोदय मंडल, बीकानेर क्षेत्र (मंत्री से अध्यक्ष)
- प्रदेश सर्वोदय मंडल (राजस्थान समग्र सेवा संघ) का मंत्री
- सर्व सेवा संघ से प्रत्यक्ष प्रादेशिक वैचारिक जुड़ाव।

3. गांधी-दर्शन प्रणीत विचार से जुड़ी संस्थाओं में पदेन

- राजस्थान प्रदेश नशाबंदी समिति के मंत्री (आपके मंत्रीकाल में राजस्थान में पूर्ण शराब-बंदी)
- राजस्थान गो-सेवा संघ का मंत्री, ट्रस्टी।
- सर्वोदय केन्द्र खीमेल के मंत्री
- राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि के मंत्री
- श्री गोकुलभाई भट्ट स्मारक समिति के मंत्री
- वाणी मंदिर समिति, जयपुर

4. प्रत्यक्ष मार्गदर्शन और सांख्यिक

- सर्वश्री गोकुल भाई भट्ट।
- श्री सिद्धराज ढडढा।
- श्री सोहनलाल मोदी।

- श्री जयप्रकाश नारायण जी की सेवा में बीकानेर में प्रत्यक्ष संपर्क।

5. आशु कवि

- स्पष्ट विचारों की भूमिका में सतत् अनेक वैचारिक कविताओं की संरचना करते रहने की रुचि।

6. वैचारिक संघर्ष

- प्रदेश में सर्वोदय प्रणीत अनेक संस्थाओं द्वारा चलाये गये वैचारिक आंदोलनों से प्रत्यक्ष जुड़ाव।

7. विशेष

- वर्ष 1975 में लगे आपातकाल के प्रत्यक्ष विरोध स्वरूप बीकानेर में जेल तथा पुलिस द्वारा सतत् दी गयी यातनाओं के फलस्वरूप जनवरी, 2014 से राजस्थान से स्वतंत्र लोक सेवक सेनानी के रूप में प्रत्यक्ष एवं आर्थिक सम्मान प्राप्त हो रहा है। पुलिस की प्रत्यक्ष यातनाओं में शारीरिक आघातों (आंखों और पैरों से) से प्रभावित।
- अ. भा. सर्व सेवा संघ द्वारा 23-25 मार्च, 2017 को मोतीहारी (गांधीधाम, बिहार) में आयोजित चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी समिति एवं संघ अधिवेशन के अवसर पर सम्मान प्राप्त।

प्रकृति की रक्षा, मानवता की रक्षा है : राधा भट्ट

‘प्रकृति की रक्षा, मानवता की रक्षा है’। यह बात पर्यावरणविद् तथा चिपको आंदोलन की प्रमुख राधा भट्ट ने 5 जून, 2017 को राजस्थान प्रदेश सर्वोदय मंडल एवं पिक सिटी प्रेस क्लब के संयुक्त तत्वावधान में ‘प्रेस क्लब’ में आयोजित ‘द्रव्यवती नदी का पुनर्जीवन’ संगोष्ठी में कहीं। आपने आगे कहा कि नदियों का महत्त्व केवल इसलिए नहीं है कि वे पीने और सिंचाई के पानी की स्रोत हैं, बल्कि वे हमारी सभ्यता व संस्कृति की समृद्ध विरासत होती हैं। विश्व की प्राचीनतम सिंधु घाटी की सभ्यता नदियों के किनारों पर

विकसित हुई थी और रक्षा के अभाव में वे नष्ट हो गयीं। द्रव्यवती नदी को उसके पुरातन रूप में संरक्षित करने की आवश्यकता पर आपने बल दिया।

संगोष्ठी में प्रो. हसन ने द्रव्यवती नदी के हजारों फुट चौड़े पेटे के ऐतिहासिक स्वरूप को अतिक्रमियों द्वारा सीमित कर नदी का मूल स्वरूप बिगाड़ने का आरोप लगाया। श्री एल. एल. शर्मा ने चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि द्रव्यवती नदी के पुराने बहाव क्षेत्र में भू-माफियाओं द्वारा किये गये कब्जे तथा प्रदूषित जल-मल के निस्तारण के कारण गंदे नाले में

परिवर्तित कर दिया गया है। इसे संगठित नागरिक शक्ति ही बचा सकती है।

एम.एल. झंवर, न्यायमूर्ति आई.एस. असरानी, सुरेन्द्रनाथ भार्गव, सत्यनारायण सिंह, वशिष्ठ कुमार शर्मा, रामेश्वर शर्मा तथा राजेन्द्र कुम्भज आदि ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

प्रदेश सर्वोदय मंडल की अध्यक्ष आशा बोथरा ने द्रव्यवती नदी को जयपुर की जीवन-रेखा बताते हुए कहा कि नदी रक्षा में महिलाओं की महत्वपूर्ण भागीदारी रहनी चाहिए क्योंकि वे प्रकृति का रूप हैं।

संचालन सर्व सेवा संघ के प्रवक्ता भवानी शंकर कुसुम ने किया। —आशा बोथरा

कविताएं

दिव्या शुक्ला की दो कविताएं

उत्तर दो रघुनंदन

हे आर्य पुत्र!
मेरी शंका का समाधान करो
मैं धरा-नंदिनी सीता आज
तुमसे एक प्रश्न पूछती हूँ
वो पुत्र तुम ही हो न
जिसने पिता के वचन हेतु
चौदह साल का वन गमन
सहर्ष स्वीकारा परंतु
पत्नी को दिए सात वचन
तुम कैसे भूल गये?
हे राघव! तुम भले ही
मातृपितृ भक्त हो
अनुकरणीय भ्राता भी
परंतु क्या तुम
उपमेय पति हो?
अपनी आसन्नप्रसवा पत्नी को
वन भेजकर तुमने किस-
मर्यादा का पालन किया
जो तुम्हारे ही वंशज को
अपने रक्त मांस से पोस रही थी
उसे वन की कठोर जीवन शैली
सौंपते हुए तुम्हारा हृदय नहीं कांपा?
तुममें इतना भी साहस न था
कि उसे उसका अपराध बताकर
स्वयं छोड़ आते-परंतु
लघु भ्राता द्वारा भेज तुमने
अपना अपराध बोध तो
स्वयं ही सिद्ध कर दिया-
अयोध्या नरेश ये कैसा न्याय है?
कैसी मर्यादा है मर्यादा पुरुषोत्तम?
अब क्या कहूँ-नहीं कहूँगी कुछ
मैं अनुगामिनी हूँ तुम्हारी-
हे रघुवीर वन गमन के समय
तुम्हारे साथ आने का निर्णय मेरा था

पति-धर्म में कौन-सी
कमी रह गयी थी
जो मेरी अग्नि परीक्षा ली तुमने
हे राघव दुःख और कठिन परीक्षा की
घड़ी में छाया की भांति साथ रही
अपनी ही अनुगामिनी को
धोबी के मात्र दो बोलों पे त्याग दिया
जाओ दशरथनंदन
मैं जनकनंदिनी वसुधापुत्री सीता
तुम्हें क्षमा करती हूँ
जानते हो आर्य पुत्र



मैं धरा की पुत्री हूँ
माता का धैर्य है मुझमें
तुम्हारे पुत्र तुम्हें सौंप-
मैं अपनी माँ की गोद में
विश्राम करती हूँ-
हे रघुवीर तुम्हें त्याग कर
सदा के लिए-
बस यही प्रतिकार है मेरा
मुझे ज्ञात है
तुम अनुत्तरित ही रहोगे।

अहल्या अब पाषाण नहीं बनेगी

पत्थर तो हूँ पर अहल्या नहीं
फिर राम तुम भी तो नहीं
नहीं चाहिए तुम्हारा स्पर्श
इस पत्थर में स्पंदन भरने को
अगर असंभव को संभव कर सको
इस पाषाण हृदय पे अंकित करो
कुछ कोमल अभिव्यक्तियाँ
पर नहीं, कहां कर सकोगे
पुरुषोचित अहम तुम्हारा दम्भ
बार-बार रोकेगा तुम्हें
तुम या तो छलना जानते हो
किसी अहिल्या को छद्म रूप धर
और उसी को सांत्वना नहीं
पाषाण बना देते हो, अपने व्यंग बाणों से
पति के रूप में-थिक् है तुम पर
अपने अहंकार के वशीभूत हो
अरे तुम उस इंद्र को दंड दे सकते थे
जिसने सतीत्व भंग किया छल से
छली गयी नारी तो स्वयं आहत है
नहीं बदला अभी भी कुछ
आज छल बल दोनों है-
इंद्र का प्रतीक कामांध पुरुष
एवं गौतम ऋषि के प्रतीक पति
पर नहीं है तो वो अहिल्या जो
उस युग में पाषाण बनी पड़ी रही
युगों तक मार्ग में अविचल
सिर्फ एक स्पर्श के लिए
किसी इंद्र के प्रतीक में नहीं है
अब इतना साहस छल सके
न ही किसी के छुद्र अहंकार में
इतनी शक्ति वो तिरस्कृत करे
यह शरीर मंदिर है नारी का
और मंदिर परम पवित्र होता है
इसमें वास करने वाली आत्मा
शक्ति और आत्मविश्वास से पूर्ण होती है
अब कोई अहिल्या पाषाण नहीं बनेगी
तुम्हें बदलना होगा अब...
इस कलयुग के इंद्र-और गौतम।

